नरेश रुन्धे हुये, कण्ठ से कह उठता है—"गुरूदेव मैं आपका
पकार जन्म-जन्म तक नहीं भूलूंगा। आपने मेरे अज्ञान के
घन पर्दे को चीरकर फेंक दिया"।..........

मैं चारों तरफ से निराश हो चुकी थी,.......कल तो इन्होंने
रे पूरे जीवन को झकझोर दिया......मेरा हृदय तड़प उठा
.....कहने लगे—अब अंतिम निर्णय लेकर आया हूँ, अब मेरे
र्णय को तुम क्या तुम्हारे देवता भी नहीं बदल सकते।........
ी कल्पना चित्र से.......



"आत्म हत्या"



आचार्यप्रवर श्री नानालालजी म० सा०

के सुशिष्य

पंडितरत्न श्री शान्ति मुनिजी

आधार समर्पण का

उन्हीं ज्योति पुञ्ज

आचार्य श्री

"नारेश" को,

जिन्होंने

चिर मुद्रित

नेत्र युगल को,

आलोकित कर

जीवन के

कण-कण में

ज्ञानालोक का

अभिनव

संचार किया !

—शान्ति मुनि

स्वतः स्फूर्त

आचार्य श्री का वयक्तित्व अत्यन्त महिमा मण्डित व्यक्तित्व है। उनकी वाणी में अद्भुत सरसता है। उनके चेहरे पर अलौकिक शान्ति है और नेत्रों में ब्रह्मचर्य की अपूर्व तेजस्विता है, जो प्रत्येक आगन्तुक को प्रथम दर्शन में ही सहज भावाभिभूत कर देती है, उनके जीवन के अणु-अणु से समता का विमल स्रोत प्रवाहित होते रहता है। उनके चरण हजारों हजार श्रद्धालु भक्तों की श्रद्धा पयस्विनी से प्रक्षालित होते रहते हैं। कि बहुना उनका सम्पूर्ण जीवन उस तेजस्वी भास्कर के समान है, जिसके प्रकाश से सम्पूर्ण मानव जगत ही नहीं, अपितु समस्त वायुमण्डल आलोकित हो उठता है और अज्ञान की सघन तमिस्रा से पार किसी दिव्य प्रकाश की अनुभूति में पहुंच जाता है।

यह सब एक गुरुभक्त शिष्य की भक्ति का अतिरेक नहीं है, अपितु अनुभूति गत सत्य की मात्र अभिव्यक्ति है, प्रस्तुत रचना में कल्पना चित्र निरी कल्पना ही नहीं, किन्तु नामान्तर एवं शब्दांतर के साथ सत्य का प्रकटीकरण है।

यह मेरी एक कल्पना ही नहीं किन्तु ऐसे अनेक घटनाचक्र मानस में घूम रहे हैं। जो सत्य के बोधक है। अनेक भक्तों के मुख से जीवन की उपलब्धियों के एवं जीवन परिवर्तन के करिश्में सुन चुका हूँ। मैंने तो केवल उसे शब्दों के सहारे अभिव्यक्ति दी है वह भी अपनी सामान्य-सी बुद्धि और सीधी-सी भाषा में भले ही नामांकन की दृष्टि से यह कल्पना लोक ही हो, किन्तु इसके पीछे भी कितने गहरे तथ्य जुड़े हुए हैं, यह आचार्य देव के उपपास का अनुभव करने वाली प्रतिभा ही समझ सकती है।

—शान्ति मुनि

प्रकाशकीय

साहित्य के पृष्ठों पर अतीत और वर्तमान दोनों एक साथ सुशोभित होते हैं। विगतकालीन संख्यातीत घटनाएँ ऐतिहासिक संज्ञा धारण करती हुई साहित्य के पृष्ठों पर अंकित होती चली जाती हैं। और दूसरी ओर वर्तमान की अनेक क्रिया-प्रक्रियाएँ भी साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश पाती जाती हैं। इस प्रकार वर्तमान और अतीत दोनों का मिला-जुला आलेखन साहित्य का रूप धारण कर लेता है।

आधुनिक परिवेश में अन्यान्य विधाओं की तरह साहित्यिक विधा भी दो भागों में विभक्त हो चुकी है, सत्साहित्य एवं असत्साहित्य। वैसे सत् एवं असत् की परिभाषा का निर्धारण साहित्य के क्षेत्र में आसान नहीं है किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि, जीवन को आध्यात्मिक एवं सामाजिक उत्क्रान्ति की दिशा देने वाला साहित्य सत्साहित्य की संज्ञा से अभि-संज्ञित होता है।

जीवन निर्माण-विकास में सत्साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु खेद है कि आज जासूसी उपन्यास आदि कुत्सित साहित्य का इतना अधिक प्रचार बढ़ता जा रहा है कि आज प्रायः हर युवा के हाथ में उसे पाया जा सकता है।

सत्साहित्य का भी आज अभाव नहीं है, किन्तु सत्साहित्य अर्थात् आध्यात्मिक साहित्य का विषय प्रायः इतना रुक्ष होता

है कि जब तक उसे आधुनिक शैली में ढाला नहीं जाये, उसमें रोचकता नहीं आ पाती है और रोचकता के अभाव में युवावर्ग उस ओर आकर्षित नहीं हो पाता है।

प्रस्तुत कृति में समता दर्शन प्रणेता धर्मपाल प्रतिबोधक महामहिम आचार्य श्री नानालालजी महाराज साहब के विद्वान् शिष्य श्री शान्तिमुनिजी ने कुछ अंशों में इस अभाव की पूर्ति करने का प्रयास किया है। मुनिश्रीजी ने आत्महत्या की भयंकरता को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से बहुत मार्मिक एवं रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। जो आज के भटकते-सामान्य सी बातों पर आत्म-हत्या के लिये उत्प्रेरित युवकों-व्यक्तियों के लिये दिशाबोधक का कार्य करेगा और साथ ही उनकी औपन्यासिक क्षुधा तृप्ति पूर्वक आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान करेगा। ऐसा हमारा विश्वास है।

यह मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि इस प्रकार के ग्रन्थ के प्रकाशन का गौरव सहज संयोग के रूप में मुझे मिला। चूंकि मैं एक युवक हूँ। मेरे दिशाहीन भटकाव के अवरोध में श्रद्धेय आचार्य देव एवं वन्दनीय मुनि श्री का महत्वपूर्ण मार्गदर्शन रहा है। प्रस्तुत कृति में भी वही मार्ग दर्शन है जिसे मैं अपने युवा साथियों तक पहुँचाना चाहता हूँ।

आपका

जयन्त भूरा

"सुधा, अब टांगें टूट चुकी हैं। आवश्यकता से अधिक दौड़ चुका हूं, भाग्य ने कहीं सहयोग नहीं दिया। मन तो कहता है कि "बी० काम" और 'साहित्यरत्न' के इन सर्टीफिकेटों को आग में झोंक दूं और ट्रेन के नीचे जाकर सदा सदा के लिये सो जाऊँ……कहते हुये नरेश ने एक गहरी सांस ली।

[नरेश एक संभ्रान्त कुलीन बी० कॉम० एवं साहित्यरत्न की उपाधियों से अलंकृत युवक किसी बहस में माता-पिता से अलग हो जाता है। किसी तरह अपनी ससुराल से प्राप्त सामग्री के बल पर निकटवर्ती नगर इन्दौर में एक छोटा सा मकान किराये पर लेकर रहता है। चार महीनों से लगातार किसी नौकरी की तलाश में मारा-मारा फिर रहा है। आज भी दिन भर कई आफिसों और व्यापारिक संस्थानों के चक्कर काट कर आया है। हताश और निराश होकर खाट पर बैठते हुये उपर्युक्त वाक्यावली एक ही सांस में अपनी पत्नी सुधा से कह जाता है]

सुधा जो अभी तक शान्त बैठी थी, गंभीर मुद्रा में कहती है "मैंने आपसे पहले ही कहा था कि छोटी सी बात पर गुस्सा करके माता-पिता से अलग हो जाना ठीक नहीं है। उन्होंने कहा ही क्या था, यही तो कि कुछ काम धाम करते नहीं और दिन

भर यार दोस्तों के साथ घूमते फिरते हो, दुनियां भर का खर्च करते रहते हो......कोई गलत बात तो उन्होंने कही नहीं...... क्या इतना भी अधिकार नहीं है माता-पिता का, कि वे अपनी संतान को सही मार्ग दर्शन दे सकें! मैं तो कहूँगी, अभी भी चलो, पिताजी से क्षमा मांगलो और वहीं उन्हीं के साथ रहो।"

"तुम बारबार उसी को दुहराती हो और जले पर नमक छिड़कती हो" मैं कई बार कह चुका हूं "मुझे आत्म हत्या कर लेना मंजूर है, पर पिताजी के दरवाजे पर कभी पैर नहीं रखूंगा"। आवेश के स्वर में नरेश ने सुधा को हल्की सी डांट दी।

"अच्छा बाबा, जैसी इच्छा हो करो, मैं आपके किसी काम में कहां कोई बाधा डालती हूं, जैसा लाते हो पहनती हूँ, और रूखा-सूखा खाकर सो जाती हूँ। पर जब तुम संध्या को हारे थके और निराश होकर आते हो और मर जाने की बात करते हो तो मेरा रोआं-रोआं कांप उठता है। अभी तो मेरे पिताजी के दिये हुये कुछ आभूषण पड़े हैं, कुछ महीने आराम से निकल जायेंगे। आप अभी से इतने निराश क्यों होते है। कभी तो भाग पलटेगा। सुधा अतिशान्त मुद्रा से कहती हुई नरेश के चेहरे की ओर अनिमेश दृष्टि से देखने लगी।

"सुधा, तुम ठीक कह रही हो, निराश होने से कुछ नहीं होने वाला है, किन्तु धैर्य की भी तो सीमा होती है। आज चार-चार महिने हो गये भटकते हुये, कितने आफिसों और कितनी

दुकानों पर चक्कर काट आया हूँ, मिन्नतें कर आया हूँ, पर भाग्य ने कहीं सहारा नहीं दिया। लाखों की आबादी वाले इस शहर में मुझे कोई काम न दे सका, मेरी शिक्षा का समाज कोई उपयोग न ले सका। अब मेरे धैर्य का बांध टूट चुका है, आज अन्तिम निर्णय लेकर लौटा हूँ कि अब इस संसार में सदा के लिये.... " कहते हुये नरेश का गला रूंध गया। सुधा एक-दम से नरेश के मुंह पर हाथ रख देती है, "बस अब रहने दीजिये, मुझे नहीं सुनना है, आगे कुछ" कहती हुई, सुधा सिस-कियें भरकर रोने लगती है।

दस मिनट की नीरवता के पश्चात् सुधा ने किसी तरह साहस बटोरा और कहने लगी—"पतिदेव, मैं समझ रही हूँ आपकी अन्तर्व्यथा को। किन्तु उसका समाधान आत्महत्या से कभी नहीं हो सकता है। आत्महत्या के पश्चात् आप सुखी हो जावेंगे! न मालूम कौन सी योनि में यह आत्मा भटकती रहेगी। आप जरा शान्त मस्तिष्क से चिन्तन करें। मेरे जीवन पर भी ......"।

नरेश जो अभी तक गुम-सुम सा बैठा था, एक गहरे विश्वास के साथ बोला "सुधा, तुम वास्तव में देवी हो, तुमने कितनी बार मुझे मृत्यु के मुख से बचाया है। मैं कभी सोच नहीं सकता कि एक नारी में इतना साहस और धैर्य हो सकता है, सच पूछो तो मैं तुम्हारे ही आधार पर जी रहा हूँ। "कहते हुये नरेश की आंखें छलछला जाती हैं।

सुधा नरेश के चेहरे की ओर टकटकी लगाये देख रही थी। सहसा मुंह पीछे घुमाकर कपोलों पर गिरे हुए अश्रुबिन्दुओं को आंचल से पोंछती हुई—"पतिदेव मुझे आकाश में मत उछालिये, मैं तो आपकी चरण उपासिका हूं। आपका सुख मेरा सुख, आपका दुःख मेरा दुःख है। आपकी अधीरता मुझे एकदम अधीर बना देती है। आप थोड़ा साहस से काम लें, कुछ और प्रयास करें, क्या पता अगला क्षण सफलता की प्रतीक्षा कर रहा हो।

"अच्छा देवी, कुछ दिन और सफलता को प्रतीक्षा करता हूँ, मेरे धैर्य का बांध तो बार-बार टूट जाता है। और तुम फिर से उसमें पलस्तर (कारी) लगा देती हो। खैर, कुछ खाना-खाना बनाया है?"

"ओहो बातों ही बातों में रोजाना भूल जाती हूं, और तो सब कुछ तैयार है, जरा गरम-गरम फुलके उतार लेती हूँ" कहती हुई जल्दी से किचन की ओर चली जाती है। फुलके उतार कर दोनों खाने बैठ जाते हैं। खाना खाते हुये नरेश ने किस-किस आफिस और व्यापारिक संस्थान पर चक्कर लगाये, और क्या-क्या उत्तर मिला, सभी का चिट्ठा रख दिया। सुधा बीच-बीच में कुछ प्रश्न करती हुई गंभीरता पुर्वक सभी सुन जाती है।

—xx—

"सर मैंने बी० कॉम० द्वितीय श्रेणी में पास किया है, साथ ही साहित्यरत्न की उपाधि भी प्राप्त की है। आप जरा इन्टरव्यू ले लें, कहीं किसी पोस्ट पर व्हेकेन्सी हो तो……। [कहते हुये नरेश ने एक गहरी सांस ली।]

"यहाँ अभी कोई स्थान खाली नहीं है, शायद आपके भाग्य ने साथ नहीं दिया। कल यदि आप पहुँचते तो सम्भवतः अपाइन्टमेन्ट हो जाता। कल तक हमारे पास क्लर्क की तीन सीटें खाली थी। कल ही पाँच व्यक्ति आये, उनमें से तीन को अपाइन्टमेन्ट दिया जा चुका है"। बैंक आफिसर ने मीठा-सा उत्तर दिया।

नरेश एक कड़वी घुंट पीकर सीढ़ियें उतर जाता है। चेहरे पर निराशा की रेखायें उभर आती है। डगमगाते पैरों से सड़क नापता हुआ मिल मैनेजर के आफीस पर पहुंचता है। "श्रीमानजी, क्या आपके यहाँ मेरी कोई उपयोगिता हो सकती है? मैंने इंगलिश मीडियम में बी० कॉम० किया है, हिन्दी में साहित्यरत्न किया है, चार महीनों से किसी नौकरी की तलाश में हूं……"।

"What is your name ?" वाट इज योर नेम ? मिल मैनेजर ने अभिमान के लहजे में प्रश्न किया।

"श्रीमान, मुझे नरेशकुमार कहते हैं, निकट के कस्बे में रहता हूँ। करीब छै महीने से अपनी पत्नी के साथ यहीं रह रहा हूँ। नौकरी की तलाश में हूँ....यदि आप कुछ मेहरबानी कर दें...."

"अच्छा आपका कोई परिचित है यहाँ ?"

"नहीं सर, यहाँ मेरा किसी से निकट का परिचय नहीं है।"

"तो फिर यहाँ आपको कोई स्थान नहीं मिल सकता।" कहते हुये मैनेजर साहब अपनी फाईल में खो जाते है।

नरेश एक बार और कातर स्वर में बोला—"सर कुछ दिन आप वैसे ही ट्रेनिंग के बतौर रख लीजिये यदि मेरा परिश्रम कार्य के अनुकूल हो तो अपाइन्टमेन्ट दे दीजियेगा..." नरेश ने एक गहरी सांस ली।

"कह दिया ना बिना परिचय के हमारे यहाँ किसी का अपाइन्टमेन्ट नहीं होता है। वेटर यू गो प्लीज डोन्ट डिस्टर्ब मी" मैनेजर ने एक झिड़क देकर पुन आँखें फाईल में गड़ा दीं। नरेश दूसरा विष का घूंट पीकर लड़खड़ाते पैरों से सीढ़ियें उतर जाता है। चेहरे पर गहरी निराशा छा जाती है। मन कहीं जाने को तैयार नहीं, किन्तु पैर बढ़ते जा रहे हैं। अचानक बड़ी-सी दुकान के सामने पैर रूक गये, अनिच्छापूर्वक शोरूम में प्रवेश करता है और काउन्टर पर पैर ठिठक गये.......

"बोलिये क्या बात है ?" काउन्टर पर बैठे मैनेजर ने प्रश्न-भरी दृष्टि से नरेश की ओर देखा।

"महाशयजी, आपके यहाँ कोई वेकेन्सी हो तो मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूं। वैसे मैंने इंगिलश मीडियम में बी० कॉम० और हिन्दी में साहित्यरत्न की उपाधि प्राप्त की है। एकाउन्ट का काम भी अच्छी तरह कर सकता हूँ।"

नरेश ने कुछ साहस बटोरकर प्रार्थना भरे स्वर में कहा।

"अच्छा आप कोई सर्विस चाहते हैं। पर हमारे यहां तो अभी काम करने वाले पूरे आदमी हैं, एकाउन्ट का पूरा कार्य हेड मुनीमजी सम्भाल लेते हैं। कस्टमर को कपड़ा दिखाने के लिए दस व्यक्ति और कपड़ों की घड़ी करने वाले पाँच व्यक्ति मौजूद हैं। हमें खेद है कि हम आपकी सेवा नहीं ले सकेंगे। मैनेजर ने मधुर स्वर में मीठा-सा उत्तर दे दिया।

"महाशयजी मैं बहुत परेशान हूँ। करीब चार महीने से नौकरी की तलाश में भटक रहा हूं''''आप किसी भी कीमत पर''''''" कहते हुये नरेश की आँखों से दो बून्दें गिर पड़ीं।

"भाई साहब अधीर न बनिये, समय की गति परिवर्तनशील होती है। आज आप जिस पोजीशन (स्थिति) में खड़े हैं, एक रोज, मेरी भी यही स्थिति थी। बहुत कुछ भटकने के पश्चात् मैं यहाँ तक पहुंच सका हूं। आप धैर्य रखें, यहां के अपाइन्टमेन्ट का अधिकार मुझे नहीं है। मैं तो खुद सर्विस पर हूं, आप हमारे सेठजी से मिलें, सम्भव है, आपका भाग्य कुछ सहयोग कर दें।" मैनेजर ने आश्वासन भरे शब्दों में कहा।

मैनेजर के मधुर सम्भाषण से नरेश की आँखों में आशा की हल्की सी चमक उभर आई। विनम्र शब्दों में कहने लगे– "आपको बहुत-बहुत धन्यवाद ! मैं आपके इस सौजन्य का चिर कृतज्ञ रहूंगा। आप जरा सेठजी का एड्रेस (पता) देने की कृपा करें ?"

"अवश्य, कहते हुये मैनेजर साहब ने सेठजी की कोठी का एड्रेस नोट करवा दिया।"

नरेश एड्रेस लेकर कल्पनाओं के संख्यातीत ताने-बाने बुनता हुआ जावरा कम्पाउन्ड स्थित सेठजी की कोठी पर पहुँचा।

"नमस्कार सेठ साहब, मैं एक छोटी सी प्रार्थना लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं। आपके मैनेजर साहब के सौजन्य से मैं बहुत......"

"हां, आप मुद्दे की बात करिये, क्या कहना चाहते हैं आप ?"

"क्षमा करें, मैं आपका अमूल्य टाइम नष्ट नहीं करना चाहता।......मैंने इंगलिश मीडियम में बी० कॉम० और हिन्दी में साहित्यरत्न की परिक्षाएँ पास की है। मैं चाहता हूं कि आपकी किसी फर्म में मुझे सेवा का अवसर......"

"अच्छा आप कुछ काम चाहते हैं......अभी हमारे पास आवश्यकता से अधिक कर्मचारी हैं। आप जानते हैं कि व्यापार एकदम डाऊन होता जा रहा है। मुझे विवश होकर दो चार दिन में कुछ कर्मचारियों को छुट्टी देनी पड़ेगी। आप इस समय

किसी व्यापारिक संस्थान की ओर न देखकर गवर्नमेन्ट सर्विस की ही खोज करेंगे तो अधिक उचित रहेगा......" सेठ साहब ने अपनी विवशता प्रगट की।

"सेठ साहब कुछ समय बिना पगार के वैसे ही........."

[पुनः नरेश की आँखें छलछला आती है।]

"भाई साहब मैंने कहा ना कि आजकल व्यापारियों की स्थिति बड़ी सोचनीय हो रही है। सभी को अपनी इज्जत रखना भी कठिन हो रहा है... ...आप कहीं आफिस में स्थान ढूंढ़ें।"

नरेश को आगे कुछ भी बोलने का साहस नहीं हुआ। उसका गला रूंध गया, आंखों में गहरी निराशा के बादल तैरने लगे। शून्यचित्त से शून्य को ओर निहारता हुआ, यह वहां से लौट गया। अब आगे कदम बढ़ाने का साहस न बटोर सका। कदम पीछे की ओर मुड़ गए। लड़खड़ाते पैरों से अपने निवास स्थान में प्रवेश करता है। जहाँ सुधा उसकी अधीरता पूर्वक प्रतीक्षा कर रही है।

—❀—

"सुधा, अब तो पूरा दम टूट चुका है। आज अन्तिम निर्णय लेकर लौटा हूँ। अब कोई ताकत मेरे निर्णय को नहीं बदल सकती।.......तुम्हारे कहने पर मैंने दो महीने तक और टांगें तोड़ीं, पर भाग्य की विडम्बना है। मैं कहीं कोई काम नहीं पा सका। मुझे दुख है तो एक ही बात का कि तुझ जैसी पत्नी पाकर भी मैं अभागा तेरे लिए कुछ नहीं कर सका। बस आज यह अन्तिम......"

[निराश एवं थका हुआ नरेश खाट पर बैठते हुये एक गहरी विश्वास के साथ सुधा के समक्ष उपर्युक्त वाक्यावली कहते हुये धड़ाम से खाट पर गिर पड़ता है, और सिसकियें भरकर रोने लगता है।......हा सुधा,......हा मां......]

पतिदेव......दोनों कुछ क्षणों के लिये बेहोशी की दुनियां में खो जाते हैं।

आधा घंटे की मूर्छा के बाद अचानक सुधा बड़बड़ाती हैं पतिदेव... ...पतिदेव......कहां जा रहे हो......मुझे अकेली संसार में न छोड़ें......मैं किसके सहारे जीऊँगी। मुझे भी साथ में लेते जाइये।

नरेश एकदम चौंककर उठता है। सुधा के सीने पर हाथ रख देता है। सुधा चौंकती हुई फिर पैरों से लिपट जाती है।

दस मिनट की स्तब्धता के बाद सुधा एकदम उठती है। उसकी आंखों में आशा की कुछ चमक तैर जाती है। वह कुछ साहस भरे गम्भीर शब्दों में बोल उठती है……पतिदेव अधीर न बनें। आप अभी आराम से भोजन करिये। रात्रि को शान्त मस्तिष्क से हम जीवन की अन्तिम दौर के विषय में सोचेंगे" कहते हुये सुधा पानी का गिलास भर ले आती है 'लीजिये जरा हाथ मुँह धो लीजिये।

"अब हो चुका मेरा मस्तिष्क शान्त, खूब सोच-विचार लिया है। अब मेरा निर्णय नहीं बदल सकता है। हां तुम्हें भी साथ चलना है, और जन्म-जन्म तक प्रीति निभाना है, तो चलो आज इस जीवन का आखिरी भोजन कर लें। थोड़ा जहर मिला दो, दोनों खाकर आराम से उस क्रूर परमात्मा की गोद में सो जाएं और सदा के लिए…" कहते हुये नरेश आंखें फाड़कर सुधा की ओर देखने लगता है।

"स्वामी निश्चित मैं कल आपके साथ सदा के लिये हो जाऊँगी। बस एक अन्तिम इच्छा और है' रात्रि भर आराम करें। प्रातःकाल आचार्य श्री के पास चलकर एक मांगलिक सुन लें, सुधा ने बड़े गम्भीर स्वर में प्रार्थना की।

"कौन है आचार्य श्री ? मैं अब पूरा ऊब चुका हूँ इस संसार से। इतनी बड़ी दुनिया में मुझे कोई रोजी रोटी न दे सका। क्या-क्या प्रताड़नाएं और कठोर उत्तर सुन चुका हूँ, मैं इन आफिसरों और धनाधीशों से। ये तेरे गुरूजी कहा कोई नौकरी

लगा देंगे, मेरी ?......अब तुम बस करो......और न अब मुझे कोई नौकरी करना ही है। नौकरी के पूर्व ही भिखारी बन कर इतनी प्रताड़ना खानी पड़ी है, तो फिर नौकरी करके न मालूम क्या क्या सुनना पड़ेगा, और कौन-कौन से पहाड़ों को सिर पर उठाना पड़ेगा...... "बस करो सुधा अब मुझे एक-एक क्षण भार रूप लग रहा है। इस क्रूर दुनियां का स्मरण करते ही मेरा रोम-रोम कांप उठता है। यहाँ कोई किसी का नहीं है। सुधा न तुम मेरी हो......और न मैं तुम्हारा......"

नरेश की आंखों में क्रूरता छा जाती है। पूरा शरीर कांपने लगता है। वह ओंठ भींच कर सो जाता है......

सुधा के मन में न मालूम कुछ अजीब सी आशा की लहर उठ चुकी थी। कुछ निराला धैर्य था। वह गिलास के पानी से एक कपड़ा गीला कर लेती है, और नरेश के मस्तिष्क पर रख देती है। उसे हल्की सी नींद आ जाती है। सुधा खाट पर बैठ जाती है और कपड़े पुनः पुनः बदलकर गीला करती रहती है। घंटे भर की विश्रान्ति के पश्चात् नरेश हड़बड़ा कर बैठ जाता है......सुधा......सुधा......मैं जा रहा हूँ......सुधा...तुम्हें छोड़कर सदा के लिए......"

सुधा नरेश के हाथ को अपने हाथ में ले लेती है स्वामी चलिये मैं भी चल रही हूं, अच्छा......कुछ खाना तो खालें।" नहीं सुधा, मुझे अब कुछ नहीं खाना है। अब तो परलोक में ही...।" सुधा पुनः नरेश को सुला देती है और फिर ठण्डे कपड़े

की पट्टी रख देती है। बीस मिनट बाद नरेश अकचका कर उठता है। अब उसका मस्तिष्क थोड़ा शान्त है। सुधा उसके हाथ में पानी की गिलास थमा देती है। नरेश उठकर हाथ-मुँह धो लेता है, और एक गिलास पानी पी लेता है। फिर सुधा थाली लेकर आ जाती है, दोनों मौन पूर्वक गुमसुम भोजन कर लेते हैं और सो जाते हैं।

सुबह उठकर सुधा नहा धोकर एक अच्छी सी पोशाक पहन कर जल्दी से तैयार हो जाती है, और नरेश के उठने की प्रतीक्षा कर रही है। गवाक्ष से रवि की किरणें ज्योंही नरेश के चेहरे पर गिरती है कि वह सहसा चौंककर उठ बैठता है। सुधा को सामने खड़ी देख "अरे, आज तो बहुत नींद लग गई...खैर, अब जाना भी कहां है। घूम घूमकर पूरा थक चुका हूँ, अब तो...... अचानक सुधा के वस्त्रों की ओर देखता हुआ....पर तूने आज यह कहाँ की तैयारी की है ? .." और प्रश्न भरी दृष्टि से सुधा की ओर देखने लगा ।

"मुझे मालूम है कि आप उठते ही जाने की चर्चा करेंगे तो मैंने सोचा कि मैं पहले से क्यो न तयार रहूँ...ताकि अनन्तकाल तक आपके स्नेह को पा सकूं।..." सुधा ने मुस्कराते हुये थोड़ा सा व्यंग किया।

"तो क्या तू यह समझ रही है कि मैं तुझे प्रतिदिन मरने की झूठी धमकी दे रहा हूँ...।" कुछ आवेश के स्वर में कहता हुआ नरेश झुंझलाता हुआ खाट से उठ जाता है..." अब किसी

की ताकत नहीं कि मुझे अपने निर्णय से हटा सके……अब मेरा यह अन्तिम मिलन ही समझना…और यदि मिलना हो तो दो घंटे बाद रेल की पटरी के नीचे इस भौतिक देह के अन्तिम दर्शन कर लेना…" कहते हुये नरेश के ओठ काँपने लगे। सुधा ने नरेश का हाथ पकड़ लिया और मधुर स्वर में बोली……

"पतिदेव आप मजाक समझ रहे हैं, मैंने कोई मजाक नहीं की है। सचमुच मैं आपके साथ चलने की पूरी तैयारी कर चुकी हूं। आप मेरी जीवन नैया बीच ही में छोड़कर नहीं जा सकते…प्राणनाथ…बस एक अन्तिम इच्छा…" सुधा की आँखें छलछला आती हैं, गला रूंध जाता है।

नरेश कुछ गम्भीर होकर—सुधा, 'तुम-तुम्हारा प्रेम पुनः पुनः मेरा निर्णय ढीला कर देता है, किन्तु मैं अब इस जहरीली दुनियां से पूरा ऊब चुका हूँ, यहाँ सब कुछ पसों का खेल है, कोई किसी का नहीं है। मेरे पास पैसा नहीं है, मैं असहाय हूँ और अब इस असहाय हालत में जीना भार रूप समझ रहा हूं ……बस अब मुझे जीने के लिये अधिक विवश मत करो…" नरेश की आँखें सजल हो जाती है।

"स्वामी, मैं कहाँ विवश कर रही हूं। मैं कहाँ रोक रही हूं। मैं तो आपके साथ चलने की पूरी तैयारी कर चुकी हूं। किन्तु एक अन्तिम इच्छा है। बस उसे पूरा कर दें……फांसी के तख्ते पर ले जाने वाले की भी तो अन्तिम इच्छा पूरी की जाती

है……" सुधा गंभीर दृष्टि से नरेश की ओर देखने लगती है।

"अच्छा बाबा बोलो क्या अन्तिम इच्छा है, तुम्हारी ? पर यह निश्चित समझना कि मैं जीने के लिये किसी भी शर्त पर…"

"नहीं, मैं जीने का कहा कह रही हूँ, मैं तो यह कह रही हूं कि एक गांव से दूसरे गांव जाने के लिये भी गुरूदेव से मांगलिक सुनते हैं, तो हम तो जीवन की लम्बी यात्रा अपरिवर्त्य यात्रा की तैयारी कर रहे हैं—कम से कम आत्म निवेदना पूर्वक गुरूदेव मांगलिक सुन लें। भाग्य से आचार्य श्री शहर में ही पधारे हुये है। "सुधा ने नम्र शब्दों में विचार अभिव्यक्त किये।

"भाग्य वाग्य को तो मैं काफी परख चुका हूं। पर तुम नहीं मानती तो चलो चला चलता हूं, पर यदि वे कहें कि साधु बन जाओ तो मैं वैसा कभी नहीं करूंगा। बात असल में यह है कि अब मुझे इस पूरी दुनियां से घृणा ……" नरेश ने निराशा की निःश्वास छोड़ते हुये स्वीकृति दी। सुधा की आंखों में सफलता की चमक दौड़ गई . चेहरे पर प्रसन्नता छलछला आई। न मालूम क्यों उसका अन्तःकरण साक्षी दे रहा था कि आचार्य श्री इनके विचारों में आशा का संचार कर उन्हें बदलेंगे और ये आत्मघात की कल्पना सदा-सदा के लिये भूल जायेंगे।

अभिताभ तेजमणितु, विशाल भाल, चौड़ा वक्षः स्थल, प्रलम्ब बाहु उपनेत्र में से झांकते हुये दिव्य भास्वर चक्षु मुगल""जो सम्मुखस्थ व्यक्ति को परखने में परम प्रवीण, जादूसा प्रभावक व्यक्तित्व-जो आगंतुक को चुम्बकीय शक्ति से सहज खींच लेता है। ऐसे परम प्रभावक समता की साकार मूर्ति आचार्य देव एक पट-पर विराज रहे हैं।

नरेश और सुधा सीधे अपने स्थान से निकल कर धर्म स्थान पर पहुँचते हैं। आचार्य श्री के दर्शन करते ही सुधा ने गम्भीर स्वर में "मत्थ एवं वंदामि" (वन्दन सूचक शब्द) का उच्चारण किया। आचार्य श्री ने "दयापालो" कहते हुये परिचय प्राप्त करने की जिज्ञासा व्यक्त की।

नरेश गुमसुम खड़ा रहता है, सुधा अपना सामान्य सा परिचय देकर दस मिनट का समय मांगती है। आचार्य देव ने सहज स्मित के साथ कहा "अवश्य लीजिये। क्या कुछ पूछना है ?"

सुधा ने अपनी निवेदना प्रस्तुत करते हुये कहा—"गुरुदेव शायद आप मुझे नहीं पहचानते, मैं पारसमलजी की लड़की हूँ।

"अच्छा-अच्छा, यहां कबसे रहती हो ?"

"गुरुदेव लगभग साल भर हुआ है, मेरी शादी यहीं पास के गाव में हुई है। आज एक विशेष समस्या लेकर आपके चरणों में आई हूँ। विवाह होने के पश्चात् लगभग दो माह बाद ही पतिदेव अपने माता-पिता से अलग होकर यहां [इन्दौर] चले आये और एक छोटा सा मकान किराये पर लेकर रहने लगे। इन्होंने बी० काम० और साहित्यरत्न की परिक्षाएं अच्छे नम्बरों से पास की किन्तु भाग्य की विडम्बना ही समझिये आज छः सात महीने हो गये भटकतते हुये कहीं भी नियति अनुकूल न बनी। इन्हें नौकरी नहीं मिली·····"कहते हुये सुधा की आंखों से दो बूंदे टपक पड़ीं। आचल से आंखों को पोंछते हुये······· गुरुदेव इस कालावधि में इन्होंने कई वार आत्महत्या करने का विचार किया और मैं इन्हें रोकती रही ··· किन्तु कल ये जीवन से पूरे निराश होकर लौटे, इन्होने अन्तिम निर्णय ले लिया कि अब मैं इस क्रूर संसार मे एक मिनट भी·· ···।" सुधा का गला रुंध गया··· आखों से अन्तर्वेदना वरस पड़ी। नरेश की आखें भी छलछला जाती है, दोनों अपना धैर्य खो बैठते हैं। आचार्य श्री ने दोनों को आश्वास्त करते हुये कहा।

"आप इतने अधीर न बनें, आप नीचे दया पालें (बैठ जाएं) मैं आपसे कुछ बातें करूंगा। सुधा और नरेश आचार्य श्री के समक्ष शान्त भाव से बैठ जाते हैं। दो मिनट की नीरवता के पश्चात् आचार्य श्री जी ने मौन भंग करते हुए पूछा—"आपका शुभ नाम ? नरेश, जो आचार्य श्री के जादूभरे व्यक्तित्व से गहरा

प्रभावित-अप्लावित हो चुका था—बिजली के करेन्ट की तरह उसके विचार परिवर्तन की दिशा में तरंगायित होते जा रहे थे, कहा—"आचार्य श्री मुझे नरेश कुमार कहते हैं।"

मधुरस्मित के साथ आचार्य श्री ने कहा—"ओहो, नाम तो बहुत सुन्दर है आपका।"

"हां गुरुदेव यह सुन्दर नाम ही असुन्दर बना रहा है, पूरे जीवन को" नरेश ने गंभीर स्वर में कहा।

"नहीं, नरेशकुमारजी, ऐसा नहीं सोचना चाहिए। जीवन तो एक चलचित्र है। स्क्रीन पर कितने चित्र और रंग आते हैं और चले जाते हैं। चित्र कभी एक रूप नहीं रहता। कभी उस पर हंसते हुए अभिनेता आते है और कभी रोते बिलखते कभी वही अभिनेता बहुत बड़ा सम्राट बनकर आता है, और दूसरे ही क्षण एक भिखारी के परिवेश में दिखाई देता है, किन्तु वह परिवेश परिवर्तन में न तो हर्षित होता है और न शोक संतप्त। जीवन की भी यही स्थिति है। इसमें भी कई उतार चढ़ाव आते हैं। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि जीवन की स्थिति सर्वदा एक सी नहीं रहती। समय परिवर्तनशील है। हम देखते है, कल जो खोमचा लेकर घूमता था वही आज करोड़पति बनकर मोटरों में घूम रहा है। ऐसे अनेक उदाहरण आज हमारे सामने है जिनमें चन्द दिनों में व्यक्ति कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है।

अतः हमें निराशावादी दृष्टिकोण नहीं रखना चाहिए। हमें आशावादी दृष्टिकोण से सोचना चाहिए कि नीलाकाश में

जैसे मेघ के कारण धूप और छांव आती है, वैसे ही जीवन में कर्म वादलों के कारण सुख दुःख आते जाते हैं। आज दुःख के वादल मंडरा रहे हैं, तो कल सुख की हरियाली भी लहलहाने लगेगी।

"गुरुदेव, मैं उपकृत हुआ आपके वचनों से किन्तु आशा के कितने महल खड़े किये जायें ? उसकी भी कुछ सीमा तो होती है। मैं तो अव पूरा थक चुका हूं, इतना दौड़ा किन्तु कहीं भी भाग्य ने सहयोग नहीं दिया। मेरे अध्ययन का समाज कोई उपयोग नहीं ले सका। मैं वहुत भटक चुका हूँ पर निराशा के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगा""गुरुदेव वस अव तो अगले जीवन की ही आशा......" कहते हुये नरेश फिर अधीर हो उठता है।

आचार्य श्री अपनी वात को जारी रखते हुये .... "नरेश कुमारजी, आप फिर भटक रहे हैं। अच्छा एक वात वताओ क्या आपको ज्ञात है कि आपका अगला जीवन कैसा होगा ? क्या आपको पूरा विश्वास है कि आप निश्चित रूप से अगले जीवन में इससे अधिक सुखी वन जायेंगे ? अभी तो आप कुछ सोचने समझने की क्षमता रखते है, अगले जीवन में न मालूम कौन सी पशु-पक्षी की योनि में भटकना पड़े ? अभी तो अपने विचारों में स्वतन्त्र भी है किन्तु फिर इतनी पराधीनता के साथ कितनी यातनाऐं सहनी पड़ेगी ? क्योकि शास्त्रकारो ने कहा है कि आत्म हत्या से वढ़कर दुनियां में और कोई पाप नहीं है।

पाप का अर्थ होता है, भावनाओं में अत्यन्त क्रूरता का प्रवेश और अपने आप पर हाथ उठाने में जितनी क्रूरता आती है उतनी दूसरे को मारने में नहीं। अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी यदि आप चिन्तन करेंगे, तो स्पष्ट हो जायगा कि आत्म हनन क्रूरतम विचारों की देन है। साथ ही यह एक नैतिक अपराध भी है। आप अपने लिये न सही, कम से कम इस मासूम बालिका के लिए तो जरा सोचें, इसके जीवन की क्या स्थिति बनेगी। आप पुरुष होकर भी अपनी व्यवस्था नहीं कर सके तो यह बालिका अपने सम्पूर्ण जीवन को कैसे काटेगी? दूसरी बात भगवान महावीर ने तो आत्मघाती को "महापापी" कहा ही है, किन्तु उपनिषदकार एवं गीताकार ने भी स्पष्ट कहा है—

"अच्छे तर्भास नियज्जन्ति ये केच आत्म हनोजना" अर्थात् आत्महत्या करने वाले कामना तो रखते हैं कि हम इस शरीर की कैद से छूट जायेंगे किन्तु वे मरकर घोर तमिरत्रापूर्ण नरक में जाते हैं, जहां हजारों वर्षों तक अनन्त दुःखमय जेल में सड़ते रहते हैं।

आत्म हत्या के लिये आने वाली क्रूरता का परिज्ञान अभी आपको नहीं हो सकता क्योंकि अभी आपको आवेश का ज्वर चढ़ा हुआ है। ज्वर वाले व्यक्ति को स्वादिष्ट अन्न भी कटु ही लगता है। अत्म हत्या करने वाला आवेश वशात् क्रूरता पर उतर कर विषभक्षण, देह पर पेट्रोल छिड़कना एवं ट्रेन के नीचे सो जाना जैसे क्रूरकार्य कर तो लेता है, किन्तु उपयुक्त निमित्तों

के कारण देह में भयंकर वेदना जनित छटपटाहट होती है, और वह चिल्लाता है—अरे बचाओ……कोई बचाओ… मैं मरा जा रहा हूं, उस समय ज्ञात होता है कि आत्म-घात करने वाले के मन में कितनी भयानक क्रूरता पैदा होती है, और क्रूरता का नशा उतरते ही वह पश्चाताप की ज्वाला में झुलसने लगता है।"

"गुरुदेव, आपका कथन यथार्थ है किन्तु जब इन्सान अपने जीवन में चारों तरफ से निराश हो जाता है, तो उसके सामने इसके अलावा और कोई विकल्प ही नहीं रहता। गुरुदेव मुझे अपने चारों ओर शून्यता दिखाई दे रही है। मेरे सामने अनन्त-अन्तरिक्ष तक शून्यता छा रही है।"

आचार्य श्री ने पुनः समझाने के स्वर में कहा,—ऐसी निराशा की क्या बात है ? प्रथम तो आपके श्वसुर साहब बहुत उदार एवं सम्पन्न है,……पर हां, आपके पिताजी आदि पारिवारिक जन भी तो होंगे……?

सुधा, जो अब तक मूक बनकर सुन रही थी और नरेश के चेहरे के भावों को पढ़ती जा रही थी, अवसर देखकर बीच में बोल उठी,………"गुरुदेव मैंने इनसे बहुत कुछ कहा कि मैं पिताजी से कुछ सहयोग ले लेती हूँ अथवा हम चलकर आपके पिताजी के पास क्षमा मांग लेते है, क्योंकि एक छोटी-सी बात पर ये अपने पिताजी से अलग होकर चले आये, किन्तु दोनों बातों से ये सदा मुझे इंकार कर देते हैं और मुझे दबा देते हैं। ये कहते हैं कि मुझे मर जाना मन्जूर है, पर पिताजी के द्वार पर

पैर नहीं दूंगा और श्वसुर साहब के सामने कभी हाथ नहीं पसारूंगा.........” कहती हुई सुधा एकदम गम्भीर बन जाती है।

आचार्य श्री ने घटना के मर्म को पकड़ते हुए कहा—“अच्छा, तो मैं अब समझ गया, तुम पिताजी से रुठकर आए हो! खैर कोई बात नहीं जहां चार व्यक्ति होते हैं—बिचारों में टकराहट हो ही जाती है, किन्तु आपको इतना निराश नहीं होना चाहिए। नरेश कुमारजी, मैंने आपसे कहा न कि हमारा दृष्टि-कोण आशावादी होना चाहिए। आज सफलता नहीं मिली सम्भव है कल मिल जाए। न मालूम कौन घड़ी (पल) हमारी सफलता की प्रतीक्षा कर रही हों? कई बार ऐसा होता है कि हम उपलब्धि के करीब पहुँचते-पहुँचते लौट जाते हैं। मुझे एक घटना का स्मरण आ रहा है—अमेरिका में जब ‘कोलरेडो’ में की खदानें निकली तो हजारों वयक्तियों ने कोलरेडों के । जमीन खोदना प्रारम्भ कर दिया। दो व्यापारियों को पता लगा कि कोल्रेडो की समीप वाली पहाड़ी पर सोना ही नहीं कुछ बहुमूल्य रत्नों के पत्थर भी हैं। फिर क्या था दोनों ने पहाड़ की चढ़ाई शुरुकर दी। यात्रा करते वे टेकड़ी के ऊपरी छोर तक पहुंच गये। मार्ग में हजारों पत्थरों को उठाया और देखकर फेंक दिया। दोनों थककर चूर-चूर हो गए पर बहुमूल्य हीरे की आशा उन्हें आगे बढ़ने को विवश कर रही थी। पर आशा के साथ बन्धे हुए परिश्रम की भी तो कूछ सीमा होती है। आखिर एक यात्री थककर हार गया, कहने लगा—

यह सब व्यर्थ की आकांक्षा है मित्र, कुछ नहीं मिलने का है। किन्तु दूसरे व्यापारी के मन में अभी भी आशा का प्रदीप जगमगा रहा था, कहने लगा—मित्र, निराश मत बनों, इतना परिश्रम किया तो थोड़ा और करो। क्या पता अगला ही क्षण हमारी सफलता की प्रतीक्षा कर रहा हो। पहला व्यापारी अनिच्छा पूर्वक दस बीस कदम और आगे बढ़ा दस बीस पत्थर और उठाये और पटक दिये। आखिर हैरान होकर बोला—मित्र अब तो कमर टूट चुकी है, अब झुकने और खड़े होने की शक्ति नहीं है, चलो लौट चलें ! दूसरे व्यापारी ने पुनः आशा भरे स्वर में कहा, मित्र इतने निराश, हताश मत बनों, पता नहीं अगले ही क्षण सुनहरा सूर्य उदित होने वाला हों, और पूरे जन्म भर दारिद्रय अंधकार नष्ट हो जाय। कहते हुये ज्योंही अगले पत्थर को उठाया की उसकी आंखें चमक उठीं हृदय उछालें भरने लगा उसकी सम्पूर्ण थकावट चूर-चूर हो गई······उसके हाथ में एक बहुमूल्य कीमती पत्थर आ चुका था। उसने मित्र से कहा देखा मित्र यदि हम लौट जाते तो······क्या यह उपलब्धि के द्वार पर पहुंचकर लौटना नहीं होता······कहते हैं उस पत्थर को अमेरिका के एक धनाधीश ने दो लाख डालर में खरीदा।

मैं आपसे यही कहना चाह रहा हूँ कि आप अपने दृष्टिकोण को बदलें, क्या पता आज का सुनहरा सूर्योदय आपके लिये वरदान सिद्ध हो जाये। इन्सान को प्रतिदिन यही चिन्तन करना चाहिए कि आज का प्रभाव मेरे लिए बहुत सुनहरा एवं

सफलता सूचक हो। "प्रकृति के घर में देर है अन्धेर नहीं" यह कहावत पुरुषार्थ के लिए एक गहरी दृष्टि देती है। आप शान्त चित्त से जरा चिन्तन करें और फिर किसी भी निर्णय पर पहुंचे।

हां, एक बात अवश्य मैं आपसे कहूँगा माता-पिता से रूठ कर व्यक्ति अपने कर्मक्षेत्र में बहुत कम सफल होता है। क्योंकि माता-पिता का हमारे ऊपर अनन्त-अनन्त उपकार होता है, शास्त्रकार तो यहां तक कहते हैं कि—"अपने शरीर के जूतियें बनाकर भी माता-पिता को पहना दें तो भी उनके ऋण को नहीं चुकाया जा सकता।" आप जानते हैं जिस समय बच्चा बिछौने पर पेशाब कर देता है, तब माता तुरन्त उसे उठाकर सूखे में सुला देती है और खुद गीले में सो जाती है। माता की हृदय की विशालता और ममता एक माता ही अनुभव कर सकती है, आप और हम नहीं, आप जरा सोचें, आप अपने माता-पिता से नाराज होकर चले आये पर अब उनके चित्त की क्या दशा होगी? मैं आपसे कहूंगा यदि आपका कोई आर्थिक संघर्ष हुआ है तो आप चाहे माता-पिता से कोई सहयोग न लें, किन्तु एक बार वहां जाकर उनसे क्षमा याचना कर उनसे आशीर्वाद ले लें फिर आप अपने भाग्य को कसौटी पर कसें। माता-पिता का आशीर्वाद संतान के लिए वरदान सिद्ध होता है......।"

आचार्य श्री के श्रीमुख से जीवन के आशावादी दृष्टिकोण की विस्तृत विवेचना सुनकर सुधा और नरेश गद्गद् एवं भाव विभोर हो उठे। उनकी आँखें सजल हो गईं। नरेश रून्धे हुये

कण्ठ से कह उठता है—"गुरूदेव मैं आपका उपकार जन्म-जन्म तक नहीं भूलूंगा। आपने मेरे अज्ञान के सघन पर्दे को चीरकर फेंक दिया। आपने मेरी सोई हुई आत्मा को जगा दिया गुरूदेव, मैं किन शब्दों में आपका प्रशस्ति गान करूं। मेरे पास कोई शब्द नहीं है, जिससे कि मैं आप श्री को गौरव गरिमा की अभिव्यक्ति दे सकूं। गुरूदेव, मैं कृतार्थ हो गया—गुरूदेव…"

नरेश का कंठ अवरूद्ध हो जाता है। आत्महत्या की कल्पना के पाप का पश्चाताप आँखों के द्वार से निकल पड़ता है। वह आचार्य श्री के चरणों में गिर पड़ता है……अपने नेत्राम्बु से आचार्य श्री के चरणों का प्रक्षालन करने लगता है…गुरूदेव आज यह सुधा यहाँ अंतिम मांगलिक सुनाने को नहीं लाती तो न मालूम आज संध्या तक मैं क्या कर गुजरता। वास्तव में आज मेरे जीवन का नया प्रभाव हुआ है…यह अंतिम मांगलिक आज प्रथम मांगलिक के रूप में बदल गई। गुरूदेव यह सुधा नारी नहीं कोई वज्र हृदया देवी है।" कितना धैर्य एवं साहस है इसमें। मैं समझ पाया हूँ, कि एक नारी का दैवी रूप कैसा होता है, वह एक शिला के समान दृढ़ होती है……ऐसी शिला जिसे सागर की करोड़ों तरंगें भी अपने स्थान से नहीं हिला सकती। वह सिसकियें भरकर रो उठता है…। सुधा परिवर्तन के इस दृश्य को मुग्ध बनकर निर्निमेष देखती रह गई। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा है, किन्तु उसकी आत्मा गहरे विश्वास और विस्मृति में एक साथ खो गई। वह हड़बड़ाई

आँखों से कभी गुरुदेव की ओर तो कभी नरेश की ओर दृष्टि दौड़ाती है। वह कुछ बोलना चाहती है, पर उसके ओठों पर कोई शब्द नहीं आया। उसकी जिह्वा मानों जड़ीभूत हो गई। इस भावपूर्ण दृश्य को देखकर आचार्य श्री के पार्श्ववर्ती सन्त समुदाय की आँखें भी सजल हो जाती हैं।

आचार्य श्री ने पाप को अश्रुओं के बहाने बहने देना ही उचित समझा अतः उनकी वाणी भी मौन है। चारों तरफ नीरवता, निस्तब्धता का वातावरण व्याप्त हो गया ......किन्तु आचार्य श्री की मौन वाणी—उनकी आत्मा में गहरी बैठती जा रही है। आचार्य श्री के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पूरे वायुमण्डल को आप्लावित एवं आन्दोलित कर रहा है...लगभग १० मिनिट की नीरवता के पश्चात् आचार्य श्री ने वातावरण को मुखरित किया—नरेश कुमारजी, समय अधिक हो रहा है—मुझे प्रवचन में जाना है......हां आप भी प्रसन्न चित्त से आज प्रवचन का लाभ उठावें।

नरेश सावधान हो जाता है। उसके पूर्व ही सुधा एकदम उठती है, जैसे कोई गहरी नींद में स्वप्न देखकर उठी हो। कुछ बोलने का उपक्रम करना चाहती है पर हर्षोतिरेक के कारण मुख से शब्द नहीं निकल पाते...उसका हृदय प्रसन्नता से बल्लियों उछालें मार रहा है। आज उसे एक अपूर्व आनन्द—अभूतपूर्व शान्ति का अनुभव हो रहा है....सहसा सुधा के स्वर गूंज उठे... "गुरुदेव मुझे यही आशा और अटल विश्वास था कि अब पूज्य

चरण ही मेरे और मेरे प्राणदेव की रक्षा कर सकेंगे। मैं चारों तरफ से निराश हो चुकी थी। कल तो इन्होंने मेरे पूरे जीवन को झकझोर दिया…मेरा हृदय तड़फ उठा…कहने लगे" आज अन्तिम निर्णय लेकर आया हूँ। अब मेरे निर्णय को तुम क्या तुम्हारा देवता भी नहीं बदल सकता।" मेरा रोम-रोम सिहर उठा—सहसा डूबते को तिनके के सहारे की तरह मुझे आपका स्मरण हो आया—और मैंने किसी तरह से अन्तिम मांगलिक सुनने के बहाने आप तक पहुंचने का प्रयास किया। मुझे अटूट विश्वास था कि आपके चरणों में पहुंचकर निश्चित इनके विचार बदल जायेंगे और आज मेरा वह स्वप्न…कहते-कहते सुधा की आँखें श्रद्धा से छलछला आईं…गुरुदेव आपकी इस उपकृति को मैं किन शब्दों में अभिव्यक्ति दूं…आपकी असीम कृपा और अपरिमेय उपकार को इस जन्म में तो क्या अनन्त अनन्त जन्मों तक नहीं भूल सकती…"

नरेश और सुधा दोनों खड़े होकर पुनः भावपूर्णवंदन करते हैं और मांगलिक श्रवण कर सजल नेत्रों के साथ वहा से चल पड़ते हैं। बाहर निकलते हुये सुधा ने आग्रह किया—प्रवचन प्रारम्भ होने ही वाला है, आज प्रवचन का लाभ ले लें। गुरुदेव ने भी संकेत किया है…" अच्छा चलो कहते हुए दोनों प्रवचन मंडप में बैठ जाते हैं।

प्रवचन समाप्ति पर दोनो पुनः आचार्य देव एवम् समस्त सन्त मण्डली को श्रद्धापूर्वक चरण वंदन करते है। और मांगलिक सुनकर दोनों अपने निवास स्थान के लिए प्रस्थान करते हैं।

मार्ग में चलते हुए दोनों की वाणी मौन है। दोनों तिरछी निगाहों से एक दूसरे के भावों को पढ़ते जा रहे हैं। दोनों मौन भंग करने की एक दूसरे की प्रतीक्षा में हैं। नरेश को नहीं बोलते हुये देखकर सुधा ने ही उपक्रम किया "पतिदेव अभी तो सीधा निवास स्थान पर ही चलना ठीक रहेगा। आज दिन भर विश्राम करके इतने दिनों की थकान दूर कर लें। कल प्रातःकाल होते ही आप पिताजी का आशीर्वाद लेकर निकल जाइए···मेरी आत्मा पूरी साक्षी दे रही है कल आप निराश नहीं लौटेंगे। गुरूदेव के श्रीमुख से निकलने वाला एक-एक शब्द पत्थर की लकीर होता है, और उसके बड़े गहरे अर्थ होते हैं। देखा न आपने मेरे गुरूदेव का प्रभाव···।"

"हां देखा, पर कितने संकुचित विचार है तेरे, अभी भी तू मेरे-तेरे गुरूदेव कह रही है। अरे वह तो विश्वात्म रूप विराट् विभूति है। कितना अप्रतिम वात्सल्य छलकता है, उनकी वाणी में? कितनी सौम्य आकृति और कितनी प्रेम भरी दृष्टि है उनकी? मैंने तो आज तक ऐसा देव पुरुष नहीं देखा और नहीं मेरी कल्पना ही थी कि ऐसी दिव्य विभूति हो भी सकती है। मैं तो उनके विभा मंडल-परि पार्श्विक वातावरण से ही बहुत अभिभूत हो गया। वास्तव में हम बड़े भाग्यशाली है और तू तो निश्चित ही प्रबल पुण्यवती है जो मुझे भी आज ऐसे गुरू चरणों तक ले आई और मेरे जीवन को···" कहते हुये श्रद्धा की दो बूंदें उसकी आँखों से टपक पड़ीं।

[५]

आज सुधा और नरेश के चेहरे पर अपार प्रसन्नता है। कई महीनों बाद आज वे शान्ति की नींद सो पाए। आज उनके मन पुलकित हैं और प्राण प्रफुल्लित चेहरे पर आशावादिता की रेखाएँ चमक रही हैं। प्रातः उठते ही सुधा एक माला "नमस्कार-महा-मंत्र" की फिरा लेती है और नरेश के स्नान के लिये पानी वस्त्र आदि की व्यवस्था कर देती है। नरेश भी आज जीवन में पहली बार मुखवस्त्रिका लगाकर आधा घंटा के लिए परमात्मा की भक्ति में बैठ जाता है। पर घंटा भर किधर निकल गया उसे कुछ भी पता नहीं लगता, इतना तल्लीन हो जाता है उसका चित्त परमात्मा की भक्ति एवं गुरू कृपा के संस्मरण में। अज्ञात रूप से ही उसके जीवन में धर्म प्रवेश कर जाता है। घंटा भर बीत गया उसे ध्यान में बैठे हुए, सुधा प्रतीक्षा में खड़ी है। अचानक वह चौंकता हुआ अपने आप में आता है। जल्दी से स्नान आदि से निवृत हो कपड़े पहनता है। तब तक सुधा कुछ नाश्ता तैयार कर देती है। दोनों बैठकर नाश्ता कर लेते हैं और नरेश सुधा से इजाजत मांगता है। अपने भाग्य की परीक्षा के लिए जाने की। सुधा अति मधुर स्वर में निवेदन करती है—"गुरूदेव के संकेत तो आपके ध्यान में हैं ना"—

"....हाँ हाँ मैं समझ गया तुम क्या कहना चाह रही हो। माता-पिता के आशीर्वाद लेने के लिए किन्तु ..." मुस्कराते हुए नरेश ने एक व्यंग भरी दृष्टि सुधा के आँखों पर दौड़ाई।

"यह अभी तक आपका किन्तु विन्तु नहीं गया है।" "सुधा ने बीच में टोकते हुए कहा—"अरे बाबा जरा पूरा सुन तो लिया करो....इस किन्तु में तो बहुत बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। मैं यह कह रहा था कि माताजी के पास तो चला जाऊँगा किन्तु पिताजी..."

"बस अब रहने दो इस किन्तु को...सुधा ने फिर टोका।

"अच्छा चला जाऊँगा लेकिन केवल वंदन करके चला आऊँगा कुछ बात नहीं करूंगा और न ही कुछ याचना करूंगा...." नरेश ने गम्भीर होते हुये कहा।

"अच्छा, नमस्कार तो कर लेना आप, इतना ही बहुत है...। आप निश्चित समझिये आज सफलता आपकी प्रतीक्षा में खड़ी है।" सुधा ने आत्म विश्वास के साथ कहा।

"अच्छा तो शाम को तुम्हारा मुँह मीठा कर दूंगा" कहते हुये नरेश हँसता हुआ चला जाता है। आज उसके चेहरे पर प्रसन्नता छलक रही है। न मालूम क्यों एक गहरा आत्म विश्वास उसके अणु-अणु में व्याप्त हो रहा है। बड़ी गम्भीर गति से वह चला जा रहा है। आठ महीनों से बिछड़े हुये माता-पिता से मिलने के लिये। मन में विचित्र तरह के भाव हैं। वह अपनी मस्ती में चला जा रहा है कि अचानक किसी ने आवाज लगाई—"अरे ओ नरेश किधर जा रहे हो?"

नरेश ने पीछे मुड़कर देखा तो शिखरचन्दजी जौहरी आवाज लगा रहे हैं। वह मुड़कर नजदीक चला गया। अभिवादन पूर्वक पूछा—"फरमाइये क्या आदेश है ? आप इधर-किधर ?

"तुम्हें पता नहीं दो वर्ष हो गए यहां ज्वेलरी की दुकान कर ली है पर दो चार दिन से एक बड़ी भारी मुसीबत आ गई है। हां तुम यहां कैसे घूम रहे हो ?"

"मैं तो वैसे ही ७-८ महीनों से यहीं राज मोहल्ले में एक किराये के मकान में रह रहा हूँ। पिताजी से कुछ अनबन हो गई तो सब छोड़-छाड़ कर आ गया। नौकरी की बहुत तलाश की पर कहीं अवसर न मिला…।" नरेश गम्भीर स्वर में अपनी कहानी कह रहा था कि जौहरी बीच में ही बोल उठे—"बड़ी अच्छी बात रही, मेरी तो सारी समस्या व परेशानी ही हल हो गई। अरे ४ दिन से अपना मुनीम सब काम छोड़कर भाग गया है। अब एकाउन्ट का काम देखने वाला कोई नहीं, चार दिन से काम चढ़ा हुआ है…कहीं कोई इन्सपेक्टर जो आ गया तो मुश्किल। मैं किसी विश्वासपात्र आदमी की खोज में था… भला तुम से बढ़कर ईमानदार व बुद्धिमान व्यक्ति कहाँ मिलेगा ? हाँ तुमने अध्ययन कहाँ तक किया है ?

"सेठ साहब अध्ययन तो मैंने इंग्लिश मीडियम में बी० काम० और हिन्दी में साहित्यरत्न तक किया है…।" नरेश ने गम्भीर मुद्रा में उत्तर दिया।

"अरे वाह। फिर क्या चाहिए। चलो आफिस में बैठकर

बात करेंगे।" कहते हुए जौहरी जी उसे हाथ पकड़कर आफिस में ले गये। नौकर को चाय का संकेत करते हुये दोनों गद्दी पर बैठ जाते हैं।

जौहरी जी ने चाय की चुस्की लेते हुए बात प्रारम्भ की—तो तुम भी नौकरी की फिराक में ही थे?"

"हाँ बात तो कुछ ऐसी ही है। कल तक तो मैं निराश हो चुका था जीवन से और आत्महत्या तक का संकल्प ले चुका था, पर मेरी धर्मपत्नी सुधा, मुझे किसी तरह आचार्य श्री के पास ले गई। वहाँ करीब एक घण्टे का समय दिया हमें आचार्य श्री ने। मेरे निराशावादी दृष्टिकोण को उन्होंने प्रबल युक्तियों एवं आत्मीयता के साथ आशावादिता के रूप में बदल दिया। आचार्य श्री का व्यक्तित्व इतना गजब का है कि मैं कुछ कह नहीं सकता।" कहते हुये नरेश एकदम गम्भीर हो जाता है।

"अरे बात क्या कह रहा है आत्महत्या तक का सोच लिया और मुझसे कभी नहीं मिला?" सेठ साहब ने बड़ी उत्सुकता-पूर्वक प्रश्न किया।

"सेठ साहब कैसे मिलता? मुझे आपके यहाँ होने का कुछ पता भी नहीं था, और पता हो भी तो कैसे, मेरे भाग्य में तो इतने दिन भटकना ही लिखा था। यह आप निश्चित समझिये यदि सुधा, कल आचार्य श्री के पास मुझे नहीं ले जाती तो आज मैं इस संसार से जा चुका होता। यह तो आप आचार्य श्री की महान कृपा समझिये कि उन्होंने मुझे जीवनदान दिया है। उन्हीं

का शुभ आशीर्वाद समझिये कि इतने दिन भटकने से कुछ नहीं मिला, और आज विना प्रयास आप मुझे बुलाकर सेवा देने का प्रस्ताव रख रहे हैं और अब तो मुझमें इतना आत्मविश्वास पैदा हो गया है कि आप न रखें तो भी कोई न कोई अच्छा स्थान मिल ही जाएगा।" नरेश के चेहरे पर स्वाभिमान और आत्म-विश्वास की झलक स्पष्ट दिखाई देने लगी।

सेठ साहब आँखें फाड़े हुये नरेश के चेहरे की ओर विस्मय-पूर्वक अपलक देखते रह जाते हैं। अचानक चौंकते हुये से पूछते हैं, "कौन आचार्य श्री ? किनके पास गये तुम ?

नरेश ने कुछ विस्मय प्रकट करते हुये कहा—"आप नहीं जानते ? राजमोहल्ले में आचार्य श्री नानालालजी म० सा० विराज रहे हैं। मुझे भी वैसे पता नहीं था, पर सुधा उनकी परम भक्त है, और न मालूम उसने कैसे पता लगा लिया वास्तव में आचार्य देव तो वात्सल्य की प्रतिमूर्ति है। मैंने उनमें एक सच्चे महापुरुष के दर्शन तो किये ही है, पर मां की ममता और पिता का प्यार भी उनकी आँखों में पाया। उनकी आँखें तो प्रेम का निर्झर रही है, जिनमें निरन्तर प्रेम की धारा वरसती है।" कहते हुये नरेश की आँखें श्रद्धा से छलछला उठीं और उसका सिर परोक्षवन्दन के लिये झुक गया।

"ओहो, आचार्य श्री की वात कर रहे हो तुम, मैं तो समझा और कोई आचार्य होंगे ? उन महापुरुषों के दर्शनार्थ तो मैं प्रायः प्रतिदिन ही जाया करता हूँ। सचमुच वह तो अद्वितीय

विमल विभूति ही है। कितनी शान्ति छलकती है उनके चेहरे से ? नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति भी उनके पास जाकर परम आस्तिक बन जाता है। पर मैंने तो सुना है कि महाराज श्री का विहार होने वाला है। परन्तु तुम्हें उस गुणवान लड़की का बहुत सुन्दर संयोग मिला, जो तुम्हें नास्तिक से आस्तिक बनाने के लिए वहां तक ले गई।" जौहरी जी गंभीरता पूर्वक यह सब कह गये।

"सेठ साहब सुधा के विषय में मैं क्या कहूँ, अपनी पत्नी के बारे में अपने मुंह से कुछ कहना शोभा तो नहीं देता किन्तु वह नारी नहीं देवी है, एक बार नहीं कितनी बार उसने मुझे जीवन-दान दिया है। उसके धैर्य व साहस के सामने तो शायद अच्छे-अच्छे पुरूष भी नहीं ठहर पायेंगे।" कहते हुये नरेश के नेत्र फिर आर्द्र हो जाते हैं।

जौहरी जी ने गंभीरता को समझते हुये कहा—"भैया मनुष्य का जीवन ही सागर है। इसमें कई ज्वार भाटे तथा तूफानों के उतार चढ़ाव आते ही रहते हैं, किन्तु वे सब अस्थायी होते हैं। स्थायी होती है सदा सागर की अगाध गंभीरता। एक बात अवश्य है, बरसाती नदी की तरह आनेवाली तुफानी धारा में नहीं सम्भलने वाला व्यक्ति बह जाता है और अपने अमूल्य जीवन से हाथ धो देता है। हां यदि उसे कोई झाड़ का सहारा मिल जाता है तो वह बच भी सकता है। तुम्हारा सद्‌भाग्य है कि तुम्हें एक विशाल झाड़ का संयोग मिला, जिसने

तुम्हें यहने से बार-बार बचाया है। वाकई वह नारी तूफान में भी स्थिर रहने वाली ही होगी।"

"अरे बात ही बात में बहुत समय बीत गया। तुम्हारी तो चाय ठण्डी हो गई। ठहरो दूसरी चाय मंगवाता हूँ। कहते हुये सेठजी ने चाय का आदेश नौकर को दे दिया।

नरेश निषेध के स्वर में कहने लगा "रहने दीजिये सेठ साहब, कोई खास आवश्यकता नहीं है।" तब तक नौकर जा चुका होता है।

सेठ जी ने विषय को बदलते हुए कहा "अच्छा तो अब हम मूल पाइन्ट पर आते हैं। आपको भी काम चाहिए और मुझे विश्वस्त व्यक्ति। मैं सोचता हूँ सहज संयोग मिला है तुम्हारे जैसे विश्वस्त व्यक्ति का। बोलो, क्या तय करना है?"

"सेठ साहब मैं क्या कहूँ, मेरी कार्य क्षमता और योग्यता को देखकर आप जो उचित समझेंगे कर दें।" नरेश ने सीधे सादे शब्दों में कहा।

"अच्छा तो अभी मैं २५० रु० कर देता हूँ फिर महीने दो महीने में जैसा भी होगा सोच लेंगे।" सेठ साहब ने सहज स्वर में कहा।

"जैसा आप उचित समझें, किन्तु आज की मंहगाई को आप देख रहे है। जिस मकान में मैं रहता हूँ, उसमें छोटे-छोटे कमरे हैं, पछत्तर रु० ७५) तो किराये के ही लग जाते हैं। अभी कुछ महीनों का किराया भी मुझ पर चढ़ा हुआ है।" नरेश ने कुछ विवशता प्रकट की।

"अच्छा तो अभी ३००) कर देता हूँ, फिर यदि तुम्हारी कर्तव्य निष्ठा सुन्दर रही तो, बंकिंग पार्टनरशिप डाल दूंगा। तुम जानते हो जवाहरात के धन्धे में कभी-कभी हो गया तो एक महीने में दो-चार लाख का काम हो जाता है और कभी नहीं हुआ तो २-२ महीने माला फिराते रहो……।"

"अच्छा सेठ साहब मैं आपका बहुत कृतज्ञ रहूंगा……अभी तो गांव जा रहा हूँ, पिताजी का आशीर्वाद लेने के लिये। संध्या तक लौट आऊंगा और कल से बराबर ड्यूटी पर आऊंगा।" नरेश ने उठने का उपक्रम किया।

"अरे पर जरा ठहरना, इतनी जल्दी क्या है, चाय आ रही है। पर तुम तो कह रहे थे कि पिताजी से अनबन हो गई।" सेठ साहब ने प्रश्न भरी दृष्टि से नरेश की ओर देखा।

नरेश चाय की चुस्की लेता हुआ—सेठ साहब झगड़ा करके आया हूं तभी तो इतने महीनों से मारा-मारा फिर रहा हूं। लगभग आठ महीने हो गए मुझे पिताजी के दर्शन किए हुए। कल गुरूदेव ने मेरी आंखें खोल दीं। उन्होंने कहा कि माता पिता से क्रुद्ध होकर व्यक्ति बहुत कम सफल होता है और मैंने आज उनकी उस वाणी का चमत्कार प्रत्यक्ष देख लिया है। इतने दिनों तक मेरे विचारों में उनके प्रति अनादर के भाव थे तो भटक-भटक कर हार गया किन्तु कहीं सफलता नहीं मिली और आज ज्योंही क्षमा याचना के भाव पैदा हुए कि सहसा आपका संयोग मिल गया। मैं आज नौकरी की तलाश में नहीं पिताजी से क्षमा याचना करने के लिए निकला था।"

"वास्तव में आचार्य देव श्रीमुख से निकला हुआ एक-एक शब्द लौह-लकीर होता है। मैंने भी ऐसे कितने ही देखे हैं।" सेठजी ने नरेश के विचारों की पुष्टि की।

"अच्छा सेठ साहब मैं कल आठ बजे आपकी सेवा में यहीं उपस्थित होऊँगा।" कहते हुये नरेश खड़ा हो जाता है। "अच्छा 'जय-जिनेन्द्र'। जरा जल्दी का प्रयास करना काम कुछ अधिक चढ़ा हुआ है।" सेठ साहब ने मधुर स्वर में कहा।

"प्रयत्न करूँगा सेठ साहब, अच्छा नमस्कार। नरेश मोटर स्टैंड पहुंचकर गाँव का टिकट लेकर बस में बैठ जाता है।



"प्रणाम करता हूं पिताजी ! अपने नालायक बेटे को क्षमा कर दो पिताजी ! मैं जवानी के जोश में आकर चला गया था, मैंने आपको बहुत कष्ट दिया आप मुझे.......।" कहते हुए नरेश का गला भर आता है। वह पिताजी के चरणों में गिरकर रो पड़ता है :

पिताजी एकदम चौंककर, अरे, कौन नरेश........उसे उठाकर सीने से लगा लेते हैं। पिताजी की आंखों से टपाटप दस-बीस अश्रुकण नरेश के बालों पर से होते हुए पीठ पर सरक जाते हैं। नरेश की मां भी समीप में खड़ी-खड़ी आंखों के खारे पानी से आँचल गीला कर रही है। कोई कुछ नहीं बोल पा रहा है। वातावरण में निस्तब्धता व्याप्त है।

सहसा पिताजी ने चौंकते हुए निस्तब्धता भंग करते हुए कहा—"कोई हरकत नहीं बेटा ठोकर लगने के बाद ही तो व्यक्ति संभलता है। सुबह का भूला हुआ यदि शाम को भी घर पहुँच जाय, तो वह भूला हुआ नहीं कहलाता है। नरेश मुझे पूरा विश्वास था कि मेरा नरेश मेरा ही रहेगा। वह दूसरे का नहीं हो सकता और आज मेरा नरेश लौट आया है। पर हां बहुरानी कहां है?" कहते हुए कपोलों पर छलक आये अश्रुकणों को पोंछने लगते हैं।

नरेश कुछ सावधान होता हुआ पिताजी के हस्त-बंधनों से अपने आपको मुक्त करता हुआ माताजी के चरणों को छूता है। माताजी उसे उठाकर सीने से लगा लेती है। और फफक-फफक कर रो पड़ती है। कुछ समय के अन्तराल में सभी स्वस्थ होकर कमरे में बैठ जाते हैं। नरेश अपने आठ महीनों की 'अथ से इति' तक की सम्पूर्ण कहानी कह जाता है, और अन्त में आचार्य देव के दर्शन और सफलता के द्वार तक पहुंचने की घटना कहता है। माता-पिता टकटकी लगाये गम्भीरता पूर्वक सब कुछ सुनते हैं। बीच-बीच में आत्म-हत्या की कल्पना को सुनकर सिहर उठते हैं। पर साथ ही सुधा की सहनशीलता एवं धैर्यता को सुनकर बार-बार गद्‌गद् हो उठते हैं।

नरेश की सारी कहानी सुनकर पिताजी गम्भीर स्वर में कहते हैं "बेटा अब कहीं भटने की आवश्यकता नहीं है। तुम बहूरानी को लेकर चले आओ, यहीं गांव में छोटा मोटा काम कर लेना।" पिताजी की बात में सहमति व्यक्त करती हुई माताजी बीच में बोल पड़ती हैं……"हां बेटा मैं यहां अकेली रहूँ और बहू वहां अकेली रहे यह अच्छा नहीं लगेगा। तुम उसे जल्दी ही यहां ले आओ।"

नरेश ने विनय के स्वर में कहा—"आपका कथन यथार्थ है। आपके उपकार का बोध तो आचार्य देव ने कल अच्छी तरह करवा दिया और उनकी वाणी का चमत्कार मैं आज ही देख चुका हूं। आपके उपकार का बदला चुकाना तो दूर मैंने आपका

बहुत अनादर किया है। आपके हृदयों को न मालूम कितनी चोट पहुँचाई हैं। आज मैं क्षमा याचना के लिये ही आप श्री के सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ। यहां रहने का जहां तक सवाल है आपकी आज्ञा का पालन कर मैं यहां रह जाऊँगा पर यहां नये सिरे से व्यापार प्रारम्भ करना पड़ेगा और उसमें भी कितनी क्या सफलता मिलेगी? अभी सहज में शिखरचन्दजी जौहरी ने ३००) रु० माहवार देना मंजूर कर लिया है और आश्वासन दिया है कि कार्य अच्छा रहा तो वर्किंग पार्टनरशिप भी डाल दूँगा, ऐसी स्थिति में आप खुद चिन्तन करें कि क्या इतना अच्छा मौका हाथ से खोना ठीक रहेगा? वैसे अब मैं आपसे दूर नहीं हूँ। सप्ताह में एक दो बार आकर मिल जाया करूँगा। हां यदि अपनी बहू को माताजी अपने पास रखना चाहें तो उसे यह ! छोड़ दूंगा और अपने भोजन का प्रबन्ध कहीं होटल में कर लूंगा।" नरेश जिज्ञासा भरी दृष्टि से पिताजी की ओर देखने लगा।

"नहीं बेटा! ऐसा कोई मेरा आग्रह नहीं है कि तुम यहीं रहो। पेट के गुजारे के लिए इन्दौर तो क्या हजारों मील जाना पड़ता है। मैं तो यही कह रहा था कि यहीं कोई छोटी-मोटी दुकान खोल देते, पर हां तेरा दृष्टिकोण ठीक है। गांवों में अब कोई व्यापार भी नहीं रहा है और सहज में इतनी अच्छी नौकरी मिल रही है तो ऐसा अवसर नहीं खोना चाहिए। बहूरानी का जहां तक सवाल है वहां मकान वगैरह ठीक से जम गया हो

तो उसे भी अभी वहीं रहने दो। क्योंकि तुम्हें वहां भोजन की दिक्कत पड़ेगी व होटल में खाना ठीक नहीं है। सप्ताह में कभी एकाधबार मिल जाया करना और कभी-कभी उसे (बहूरानी को) भी साथ ले आया करना। क्यों नरेश की मां ठीक है न? "कहते हुये पिताजी नरेश माताजी की ओर देखने लगे। माताजी ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा "ठीक है जैसा आप और बाबू को जंचे कर लो पर कभी-कभी बहू को ले आया करना बेटा।" कहते हुए मां की आंखों में अश्रु भर आये।

"नहीं ऐसी बात नहीं है माताजी, आप कहें तो अभी ही उसे यहां लाकर छोड़ दूं। गुरूदेव की कृपा हुई तो थोड़े दिनों में ही आपको भी वहां ले चलूँगा। मुझे विश्वास है कि सेठजी सज्जन व्यक्ति हैं और मैं अच्छा काम करूँगा तो वे पार्टनरशिप डाल देंगे। फिर क्या चाहिए! जवाहरात के धंधे में भाग्य साथ दे तो आदमी वर्ष भर में लखपती बन सकता है। अभी मकान वहाँ जरा छोटा है, नहीं तो मैं अभी ही आपको वहीं ले चलता ....नरेश ने विनय भरी दृष्टि से देखा।

"नहीं बेटा, अभी मेरे हाथ पांव चलते हैं, और यहां कुछ काम धंधा चलता है इसलिए अभी हमारा तो यहां ही रहना ठीक है। तुम दोनों आराम से वहां रहो......अरे पर नरेश की मां तुम तो बेटे के मिलन में इतनी विभोर हो गई कि इसे पानी के लिये भी नहीं पूछा। अच्छा जल्दी करो एक गिलास दूध ले आओ......"नरेश की ओर उन्मुख होकर......उठो बेटा, हाथ मुँह धो लो। तीनों अपने कार्य में व्यस्त हो जाते हैं।

संध्या को भोजन आदि से निवृत होकर नरेश जाने की तैयारी करता है, और पिताजी से अनुमति मांगता है "पिताजी, अभी तो चलता हूँ दो चार दिन में पुनः आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।"

"रात-रात भर यही ठहरना सुबह जल्दी ही चले जाना। पिताजी ने आग्रह किया।

"और तो कोई बात नहीं पिताजी वहां वह (बहू) अकेली है। शहर का मामला है और फिर प्रातःकाल मुझे जल्दी ही सर्विस जोइन करना है।" नरेश ने विवशता व्यक्त की।

"अच्छा तो ठीक है पर जल्दी लौट आना।" कहते हुए पिताजी ने एक सौ रुपया का नोट उसके हाथ में थमाना चाहा।

"नहीं पिताजी ! अभी आपकी कृपा से मेरा कार्य ठीक चल रहा है और यहां का भी तो सब खर्च आपको देखना पड़ता है।" नरेश ने इन्कार के स्वर में कहा।

"अरे रहने दे, शहर में रहता है कुछ न कुछ जरूरत पड़ती जाती है, हमारा तो सब काम चल ही रहा है। कहते हुए पिताजी ने सौ रु० का नोट नरेश की जेब में डाल दिया। नरेश पिताजी और माताजी को अश्रुपूरित नेत्रों से प्रणाम करता है। दोनों दीर्घायु होने का आशीर्वाद देते हैं। अन्त में विदाई देते हुए अवरूद्ध कंठ से मां ने कहा बेटा बहू को भी लेते आना अबके आओ तब। बड़ी सुसील बहू है मेरी, मुझे उसकी बहुत याद आती है। कहती हुई मां सिसकियाँ भर भर रोने

लगती है। नरेश आंखों को रूमाल से पोंछता हुआ बैग लेकर रवाना हो जाता है।

"अरे जरा ठहरना तो......." माताजी ने पुनः नरेश को पुकारा ! नरेश दरवाजे तक पहुँचकर पुनः मुड़ जाता है, और माताजी के पीछे पीछे कमरे में जाता है ! माताजी आंचल से नेत्रों को पोंछती हुई एक बड़ा सा संदूक खोलकर उसमें से दो बहूमूल्य साड़ियाँ कुछ ब्लाऊज पीस एवं दो सोने के कंगन निकालकर नरेश की ओर बढ़ाती हुई......."ले ये रख ले मेरी बिटिया को दे देना......."

रहने दो ना मां क्या आवश्यकता है इसकी अभी......वैसे अभी-ससुराल वाले भी कई कपड़े पड़े हैं वह पहनती भी तो कहां है और उसे जाना भी कहां है......" नरेश ने निषेध के स्वर में कहा।

"रहने दे मैं कोई तेरे लिए नहीं दे रही हूँ मैं अपनी बेटी के लिये दे रही हूँ। यह भी तुझे भार लगता है तो मैं पहुँचवा दूँगी ......न होली पर लाया और न दिवाली पर....."इन आठ महिनों तक कैसे रो रोकर मैंने अपनी आंखों की रोशनी खोई है मैं ही जानती हूं।" कहते हुये मां पुनः सिसकियें भरकर रोते लगती है।

नरेश हैरानी से मां की ओर देखता हुआ—"मां, तुम इतनी अधीर क्यो होती हो ? तुम कहो तो मैं अभी उसे लाकर यहाँ छोड़ जाऊँ। मैं समझता हूं कि आपने ये आठ महिने कैसे

निकाले होंगे। मैं तो यह कह रहा था कि ये नये-नये कपड़े वह पहनती तो है नहीं, फिर वहां नहीं पड़े रहकर यहीं पड़े रहे; पर लाओ तुम नहीं मानती तो लिये जाता हूँ.....” कहते हुये मुँह घुमाकर रूमाल से छलछलाई आंखों को पोंछ लेता है।

“बेटा तुम नहीं जानते हो हम महिलाओं का स्वभाव... यद्यपि सुधा को यह सब कुछ नहीं चाहिए......वह तो देवी है देवी, दो महिने में ही उसने कैसा प्रेम और सेवका जादू कर दिंया मुझ पर! सच मैं तुम्हारे विछोह से जितनी दुखी नहीं हूँ उतनी......कहते हुये पुनः माताजी के नेत्र छलछला आते हैं। तुम तो बस मेरी यह छोटी सी भेंट ही समझकर उसे दे देना... ...हां पर उसे अगले रविवार को अवश्य साथ में लेते आना” कहते हुए आंचल से नेत्र पोंछ लिये।

अच्छा माताजी “कहते हुए नरेश पुनः माताजी के चरणो में नमस्कार कर वेग में साड़ियाँ आदि रख चल पड़ता है...... पूरे रास्ते भर सुधा का दैवी रूप उसके मन पर मंडराता रहता है।



क्यों देवीजी आज आपका धैर्य कहाँ खो गया? इतनी अधीर बनकर क्यों खड़ी हो? द्वार पर। मैं अब मरने वाला नहीं हूँ। "दरवाजे में प्रवेश करते हुए नरेश ने हँसते हुए सुधा को टोका।

सुधा एकदम चौंकती हुई "अरे बाप रे, इतना क्या तेज चिल्लाते हो, डरा दिया मुझे तो" पर आज इतना टाईम कहाँ लगा दिया आपने?"

"अच्छा तुम डरती भी हो? मैं कहाँ तेज बोल रहा हूँ? तेज तो बोल रही है तुम्हारी सफलता, मैं तो हमेशा ही रोज रोता चीखता ही आता हूँ पर आज"''दोनों एक दूसरे पर व्यंग कसते हुए भीतर चले जाते हैं। नरेश को खाट पर बिठाकर सुधा पानी का गिलास भरकर देती हुई " 'तो आप मिठाई बिठाई"'

"अरे बाबा बिल्कुल भूल गया"''पर मिठाई क्या पूरा सौ का नोट दिया है तुम्हारे श्वसुरजी ने अपनी बहू के लिये इच्छा हो तो यहीं चाहो जैसी मिठाई बना लो और कहो तो अभी बाजार से ले आता हूँ। फरमाइये क्या आदेश है? कहते हुए नरेश नोट सुधा की ओर बढ़ाकर मुस्कराने लगा।

"ओहो! आज तो सफलता का गहरा नशा छा रहा है! उछल-उछल कर व्यंग कसते जा रहे हैं मुझ पर। पर आप तो

निकाले होंगे। मैं तो यह कह रहा था कि ये नये-नये कपड़े वह पहनती तो है नहीं, फिर वहां नहीं पड़े रहकर यहीं पड़े रहे; पर लाओ तुम नहीं मानती तो लिये जाता हूँ······" कहते हुये मुँह घुमाकर रूमाल से छलछलाई आंखों को पोंछ लेता है।

"बेटा तुम नहीं जानते हो हम महिलाओं का स्वभाव" यद्यपि सुधा को यह सब कुछ नहीं चाहिए······वह तो देवी है देवी, दो महिने में ही उसने कैसा प्रेम और सेवका जादू कर दिया मुझ पर! सच में तुम्हारे विछोह से जितनी दुखी नहीं हूं उतनी······कहते हुये पुनः माताजी के नेत्र छलछला आते हैं। तुम तो बस मेरी यह छोटी सी भेंट ही समझकर उसे दे देना" ···हा पर उसे अगले रविवार को अवश्य साथ में लेते आना" कहते हुए आंचल से नेत्र पोंछ लिये।

अच्छा माताजी "कहते हुए नरेश पुनः माताजी के चरणों में नमस्कार कर बेग में साड़ियाँ आदि रख चल पड़ता है······ पूरे रास्ते भर सुधा का देवी रूप उसके मन पर मंडराता रहता है।



[७]

क्यों देवीजी आज आपका धैर्य कहाँ खो गया? इतनी अधीर बनकर क्यों खड़ी हो? द्वार पर। मैं अब मरने वाला नहीं हूँ। "दरवाजे में प्रवेश करते हुए नरेश ने हँसते हुए सुधा को टोका।

सुधा एकदम चौंकती हुई "अरे बाप रे, इतना क्या तेज चिल्लाते हो, डरा दिया मुझे तो पर आज इतना टाईम कहाँ लगा दिया आपने?"

"अच्छा तुम डरती भी हो? मैं कहाँ तेज बोल रहा हूँ? तेज तो बोल रही है तुम्हारी सफलता, मैं तो हमेशा ही रोज रोता चीखता ही आता हूँ पर आज" दोनो एक दूसरे पर व्यंग कसते हुए भीतर चले जाते हैं। नरेश को खाट पर बिठाकर सुधा पानी का गिलास भरकर देती हुई" 'तो आप मिठाई विठाई…'

"अरे बाबा बिल्कुल भूल गया…पर मिठाई क्या पूरा सौ का नोट दिया है तुम्हारे श्वसुरजी ने अपनी बहू के लिये इच्छा हो तो यहीं चाहो जैसी मिठाई बना लो और कहो तो अभी बाजार से ले आता हूँ। फरमाइये क्या आदेश है? कहते हुए नरेश नोट सुधा की ओर बढ़ाकर मुस्कराने लगा।

"ओहो! आज तो सफलता का गहरा नशा छा रहा है! उछल-उछल कर व्यंग कसते जा रहे हैं मुझ पर। पर आप तो

कहते थे ना—कुछ भी नहीं लाऊँगा पिताजी से। "सुधा ने व्यंग से मुस्कान भरी दृष्टि डाली नरेश के चेहरे पर।

"तो मैं कहाँ अपने लिए कुछ लाया हूं। यह तो उन्होंने अपनी बहू के लिए दिया है। कोई किसी को भेंट दें और मैं बीच में क्यों बाधक बनूं? "नरेश खिलखिला कर हँस पड़ा।"

"अच्छा तो इन रुपयों का उपयोग तो हम अपने लिये करेंगे। आप अपनी मिठाई लाइये।" सुधा ने एक ठहाका मारा।

"तो क्या तुम और हम अलग-अलग हैं। मैं जितना पैसा कमा रहा हूँ सब तुम्हारा ही तो है। हां अब मैं कल से अपना भी लाना प्रारम्भ कर दूंगा।" नरेश ने मुद्रा गम्भीर बना ली।

"अच्छा बाबा, नाराज क्यों होते हो? चलो चलो मैं गरमा गरम हलवा बनाए देती हूं आप वहीं बैठकर दिनभर की राम कहानी सुना देना। सुधा ने विषय को सम्भालते हुये कहा।"

"पर मैं तो पूरा भोजन भी करके आ रहा हूँ''''माताजी ने आज बहुत खिला दिया।"

"अच्छा तो आज मैं भूखी ही सो जाऊँगी! कुछ आक्रोश के स्वर में सुधा ने कहा।

"नहीं, भूखी क्यों सोती हो? तुम अपना बना लो और खा लो।"

"मुझे कभी अकेले खाते हुये देखा है आपने?"

"अच्छा चलो हम खा लेंगे। हलवा खाने में क्या कोई चबाना पड़ता है?" हँसते हुए नरेश खाट से उठ जाता है और

सुधा का हाथ पकड़कर रसोई घर में ले जाता है।

"सुधा मुस्कराती हुई तिरछी दृष्टि से नरेश की ओर देखती हुई रसोई के काम में लीन हो जाती है। नरेश अपनी दिन भर की राम कहानी प्रारम्भ करता है :—

"सुधा वास्तव में 'आचार्य श्री' के मुख से निकला प्रत्येक शब्द जादू सा असर कारक सिद्ध हुआ। निश्चित ही आज का दिन मेरे लिए सुनहरे सूर्योदय की प्रतीक्षा में ही था, जैसा कि आचार्य श्री ने फरमाया। मैं कल्पना नहीं कर सकता कि यह सब हो कैसे गया ?

यहाँ से मैं पिताजी से क्षमा याचना के लिए निकला था। क्षमा याचना की नहीं बल्कि क्षमा याचना के मात्र विचार पैदा हुए और मार्ग में जाते हुए पीछे से सेठ शिखरचंदजी जौहरी ने आवाज लगाई। कहने लगे मुझे विश्वस्त व्यक्ति की आवश्यकता है, और कुछ औपचारिक वार्तालाप के पश्चात् वहीं निश्चित कर लिया ३००) रु० माहवार की नौकरी।

"क्या कहा ? एक साथ तीन सौ रुपया महीना" "मैंने कहा था ना कि मेरी अन्तर अत्मा कह रही है आज निश्चित सफलता मिलेगी।" सुधा ने आश्चर्य मिश्रित गर्व से नरेश की आंखों में झांका।

"इतना ही नहीं सेठजी बड़े उदार है कहा है कि यदि काम संतोषप्रद रहा तो वर्किंग पार्टनरशिप भी डाल देंगे......" नरेश गंभीरतापूर्वक कहता चला जा रहा था।

"क्या व्यापार है सेठजी का ?" सुधा ने पूछा।

व्यापार का क्या पूछता है। भाग्य साथ दे तो साल भर में ही लखपति......जवाहरात का धंधा है........"नरेश ने उत्तर दिया। ....वास्तव में यह सब गुरुदेव की शक्ति का ही चमत्कार है। अब तो प्रतिवर्ष गुरुदेव के दर्शनों के लिए ले जाना पड़ेगा।" सुधा ने गर्वोक्ति की।

"प्रति वर्ष क्या थोड़ा काम जमने दो फ़िर तो प्रतिमाह ही दर्शन करोना।"

"ये सब बातें कहने की है, आदमी उपकार को जल्दी भूलता है, अपकार को नहीं। थोड़े व्यापार धंधे में उलझे नहीं कि सब भूल जाओगे कि कौन गुरुदेव थे ?" सुधा ने व्यंग कसा।

"अच्छा तो लो आज से ही प्रतिज्ञा करता हूँ कि वर्ष में एक बार गुरुदेव के दर्शन अवश्य करूंगा। चाहे कैसी ही परि-स्थिति क्यों न हो ?

"इस बात पर तो मुँह मीठा मैं कराऊँगी पर हां यह तो नौकरी-चौकरी की बात हुई पर माताजी ने मेरे लिए कुछ कहा या नहीं ?" सुधा ने बात बदलते हुए जिज्ञासा के स्वर में पूछा।

"अरे वहां की पूरी कहानी सुनोगी तो रो पड़ोगी मैं सेठ जी से नौकरी निश्चित करके सीधा मोटर स्टैंड गया वहां गांव जाने वाली गाड़ी छूटने वाली ही थी मैं घर पहुंचा और माता-।' के चरणों में गिर पड़ा, पहले तो पिताजी, माताजी और मैं जी भरकर रोए...... ...लगभग १५-२० मिनट तक तीनों बेथाह

हो गए, एक दूसरे में खो गए। न मालूम कितने समय तक पिताजी मुझे सीने से चिपकाए हुए अपनी आंखों के पानी से मेरी कमीज को गीला करते रहे। ...माताजी समीप में खड़ी खड़ी आंचल गीला करती रहीं उस समय का भावपूर्ण दृश्य शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। पर अंत में पिताजी ने मुझे माफ कर दिया सुधा।" कहते हुए नरेश के नेत्रों से कुछ बूंदे ढुलक पड़ीं।

सुधा आंचल से नेत्रों को पोंछते हुए बोली "यह सब तो हुआ पर मेरे लिए कुछ कहा या नहीं मातीजी ने ?"

तेरे लिए क्यों नहीं कहेगी। तेरा तो दोष कुछ भी नहीं था। दोष तो सब मेरा ही था। वे नाराज थे तो मेरे से। तेरी प्रसंशा करते हुए माताजी अघाती ही नहीं हैं। कहने लगीं मेरी बहू बहुत सुशील और गुणवान है उसे जल्दी यहां ले आना।" नरेश ने गंभीर मुस्कराहट के साथ कहा।

"तो आपने क्या कहा फिर ?" सुधा ने बीच में ही प्रश्न कर लिया।

"'कहता क्या' यही कहा कि कहो तो अभी ले आता हूँ। मैं मेरे भोजन की व्यवस्था कहीं होटल में कर लूंगा। नरेश ने हंसते हुए कहा।

"तो छोड़ दो ना मुझे अभी फिर कुछ दिनों बाद तो वैसे भी पीहर जाना ही है।" सुधा भी मुस्कराने लगी।

"क्यों ? अभी पीहर की क्या लगी है ?"

"क्यों ? लगी क्यों नहीं ? कितने महीने हो गए मुझे ? अब तो वैसे भी जाना ही पड़ेगा।"

"क्यों ?

"हूं, इतना भी नहीं समझते ?" कहते हुए सुधा ने एक कटाक्ष भरी दृष्टि नरेश पर डाली।

"अच्छा बाबा, चले जाना पर आज तो हलवा खिला दे। कल से तो होटल में खाना ही है।"

"सच कल ही छोड़ आओगे गांव ?" सुधा ने जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखा।

"नहीं, नहीं झूठ। कल नहीं अगले सण्डे को हम दोनों चलेंगे। तब तक मेरी नौकरी का टाईम टेबल भी जम जायेगा। अभी पिताजी ने मना भी किया है कि अभी मत लाना। होटलों का खाना अच्छा नहीं रहता। इसलिए दोनों साथ ही चलकर मिल आयेंगे। चार दिन और धैर्य रखो ? नरेश ने हंसते हुए कहा।"

"अच्छा तो लो हमारा हलवा तैयार है। आप भले ही मिठाई खिलाओ या नहीं।" सुधा ने हलवे की प्लेट नरेश के आगे कर दी।

"हम अकेले ही थोड़े खायेंगे दूसरी प्लेट कहां है ?"

"दूसरी तो अब आपकी ओर से होगी।" सुधा खिलखिला कर हँस पड़ी।

"अच्छा तो यह प्लेट तो अब हमारी हो चुकी है। हम इसे

ही आपको भेंट कर देते हैं।" नरेश ने प्लेट आगे बढ़ा दी। सुधा ने झट से एक कौर उठाकर नरेश के मुँह में दे दिया।

नरेश ने भी ईंट का जवाब पत्थर से दिया। और एक बड़ा सा कौर सुधा के मुँह में ठूंस दिया। दोनों भोजन से निवृत होकर शयन कक्ष में चले जाते हैं।

खाट पर बैठते हुए सुधा ने जिज्ञासा के स्वर में कहा "एक बात पूछूं, आप मुझसे कुछ छुपा तो नहीं रहे हैं?"

"अरे, ये कैसी बात की तुमने? तुम से छुपाने की क्या बात है?" नरेश ने विस्मय पूर्वक सुधा की ओर देखा।

"मेरी आत्मा कह रही है कि आपने मुझसे कुछ छिपाया है। पिताजी आपको सौ रुपये दे सकते हैं, और माता जी मेरे लिए कुछ भी न दें यह कैसे हो सकता है?" सुधा ने एक व्यंग भरी दृष्टि डाली नरेश के चेहरे पर।

(नरेश बीच में बात काट कर) "ओ हो यह बात है क्या, मैं तो बिल्कुल भूल ही गया। ......अरे वो बेग देना जरा..." सुधा बेग लेने को उठती है और बेग नरेश के हाथों में थमा देती है। नरेश हंसता हुआ बेग खोलता है......पर उसका चेहरा फकसा रह जाता है, चेहरे पर चिंता की हवाइयां उड़ने लगती है......वह चिन्तित स्वर में बोलता है......यह क्या हुआ...... इसमें दो बहुमूल्य साड़ियां, कुछ ब्लाऊज पीस और दो सोने के कंगन थे। माताजी ने लाख मना करने पर भी बड़े आग्रह से रोते हुए मेरी बेग में रख दिये थे पर इसमें तो यह मेरे ससुराल

वाला सूट का कपड़ा पड़ा है..........सुधा यह तो सब तेरी ही चालाकी है......रास्ते भर वैग को मैं सीने से चिपकाए ला रहा हूं ...।" नरेश आश्चर्य पूर्वक सुधा की ओर देखता रह जाता है।

सुधा किसी तरह से अपनी हंसी को दबाती हुई "क्यों व्यर्थ की वातें वनाते हो ? सीधा ही कहो ना " माताजी ने कुछ रुपये और दिये और अपने सूट का कपड़ा ले आया ।" कहते हुए सुधा मुस्कराने लगी।

"नहीं सुधा, तेरी कसम यह वात नहीं है.......तू अधिक परेशान मत कर, जल्दी बता.......तूने ही वे कपड़े और सोने के कंगन निकाले हैं ।" नरेश सुधा के चेहरे की ओर एक टक देखने लगता है ।

"अच्छा तो ठहरो मैं लाती हूँ, घबराओ नहीं" कहती हुई सुधा पास वाले कमरे में जाकर दो मिनट में लौट आती है।

"तो तूने तो यह साड़ी पहन ही ली है। मैंने तो मां से कहा ।" पहले ही बहुत कपड़े पड़े हैं वह पहनती ही नहीं है। पर कितनी सुन्दर लग रही तो इस साड़ी में। कहते हुये नरेश ने हाथ पकड़ कर खाट पर बिठा दिया। बात पहनूंगी क्यों नहीं कितने महीने बाद तो मां के हाथ का प्रसाद मिला है। दोनों खिलखिला कर हॅस पड़ते हैं और बातों में खो जाते हैं।

बातों ही बातों में बहुत समय बीत जाता है कभी गुरुदेव की कभी पिताजी की तो कभी सेठजी की.......अन्त में नरेश ने कहा—"बहुत टाईम हो गया है मुझे सुबह जल्दी ड्यूटी पर

ाना है। हाँ तुम मुझे सुबह जल्दी ही उठा देना चार बजे। मुझे सामायिक भी करना है और सात बजे ही दुकान पर पहुंचना है।"

"अच्छा अभी से ड्यूटी की इतनी चिन्ता लग गई है। और एक दिन में ही सामायिक पर इतना श्रद्धा पैदा हो गई ?"

"सुधा ने हल्का सा व्यंग कसा।

"तो तुम यह समझ रही हो कि मैं नौकरी की सफलता के कारण इस भौतिक उपलब्धि हेतु सामायिक कर रहा हूं। यह तुम्हारी भ्रांति है सुधा, तुम औरतें भले ही सामायिक से धन, सम्पत्ति, बेटे- बेटी, और सुहाग मांगती रहो। मेरी सामायिक इन किन्हीं भावनाओं प्रेरित नहीं है। मुझमें तो "आचार्य श्री" के प्रति एक अटूट श्रद्धा उत्पन्न हो गई है, और मैंने समझा कि जीवन में धर्म ही एक तथ्यपूर्ण सत्य है। दूसरी बात कल की सामायिक में मुझे एक अजीब सी आत्म शांति मिली। इस दृष्टि से मैंने यह निश्चय किया कि कम से कम एक सामायिक नियमित रूप से करूंगा। तुम मेरी सामायिक को अपनी सामायिक की तरह मत समझना।" नरेश ने गम्भीर स्वर में स्पष्ट किया।

"अच्छा बाबा, चाहे जैसी हो वैसी करो पर करो। अच्छा उठा दूंगी सुबह जल्दी ही हां" सुधा ने कहा।



कार लाल भवन के सामने आकर रुक जाती है। एक दम्पत्ती कार से उतरकर भवन में प्रवेश करते हैं। महिला सुनहरे तारों से सजी हुई बहुमूल्य साड़ी पहनी हुई है। उसकी गोद में एक छोटा सा मुन्ना है। युवक पूछताछ कार्यालय में जाकर जानकारी लेता है और फिर दोनों ऊपर चढ़ जाते हैं।

तीसरी मंजिल पर आचार्य श्री एक पाट पर विराजे हुए कुछ संतों को अध्ययन करा रहे हैं।

सुधा और नरेश आचार्य श्री के नजदीक पहुंचकर "मत्थएणं वंदामि" (वंदन सूचक शब्द) का उच्चारण करते हैं।

आचार्य श्री सहसा सम्मुख देखते हुए पहचानने के स्वर में "कौन नरेश कुमारजी ?"

"जी गुरुदेव!" नरेश ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। "गुरुदेव अपने श्रावक जी को तो पहचान लिया किन्तु मुझे तो भूल ही गये—" सुधा ने हँसते हुए कहा।

"नहीं नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है? तुमको तो इनसे भी पहले से पहचानता हूँ। आज तो बड़े प्रसन्न और कुछ और ही ढंग में दिखाई दे रहे हो। अभी किधर से कौन सी गाड़ी से आ रहे हो?" आचार्य श्री ने मुस्कराते हुए प्रश्न किया?

"सीधे इन्दौर से ही आ रहे हैं गुरूदेव, अपनी निज की कार में ही आये हैं।" सुधा ने कुछ शर्माते हुए कहा।

"अच्छा निज की कार भी हो गई ? आप तो जीवन से ऊब चुके थे और आत्म हत्या की तैयारी कर रहे थे ना ?

आश्चर्य के साथ आचार्य श्री ने नरेश कुमार की ओर उन्मुख होकर पूछा।

"आपकी कृपा दृष्टि के पश्चात् किस चीज की कमी रह सकती है गुरूदेव ! आपकी दया से तिलक नगर में एक वंगला भी खरीद लिया है अभी अभी यह फियट कार भी २० हजार में खरीदी है। कार आते ही सुधा जिद्द पर अड़ गई कि इसकी सबसे पहली सफर 'आचार्य श्री' के दर्शनों की होगी। मुझे अपना फौरन (विदेश) जाने का प्रोग्राम भी कैंसल करना पड़ा।" नरेश ने गंभीरतापूर्वक कहा।

"ओ हो तो आप दो वर्ष में ही इतने वदल गये, विदेश की भी तैय्यारियां करने लग गए ?" आचार्य श्री ने मुस्कराते हुए प्रश्न वाचक दृष्टि से नरेश की ओर देखा। (दोनों वंदनकर सन्मुख बैठ जाते हैं।)

"गुरूदेव सब आपकी ही कृपा का फल है। मैं तो जीवन से विल्कुल ऊब चुका था। पर सुधा किसी तरह फुसलाकर आपके चरणों तक ले आई और आज मैं आपको इस रूप में दिख रहा हूं। गुरूदेव जब मैं आपश्री की 'मांगलिक' सुनकर गया कि दूसरे ही रोज मुझे वहुत अच्छी नौकरी मिल गई।

वास्तव में वह दिन मेरी प्रतीक्षा में ही था, जैसा कि आपने फरमाया था······केवल छः महिने के बाद ही सेठजी ने मुझे अपना वर्किंग पार्टनर बना लिया। आपकी कृपा से प्रथम वर्ष में ही बहुत अच्छी आय हुई। दूसरे वर्ष तो मैं विदेश भी ला आया······अब हमारा जवाहरात का व्यवसाय अच्छा चल रहा है······गुरुदेव, अपके इस उपकार को मैं जन्म-जन्म में नहीं भूल सकता। आपने मुझे नया जीवन दिया है गुरुदेव···।" कहते हुये नरेश की आंखों श्रद्धाश्रु से भर गईं। सुधा भी मुंह घुमाकर अपने आंचल से नेत्रों को पोंछने लगीं।

"अच्छो यह सब तो पाया पर माता पिता को भी······" आचार्य श्री अपनी बात पूरी करें उसके पूर्व ही नरेश ने उत्तर दिया······"नहीं गुरुदेव! ऐसा कैसे हो सकता है, उनका तो अनन्त अनन्त उपकार है······मैंने उन्हें इन्दौर आने का बहुत आग्रह किया पर वे अभी तक तैयार नहीं हुये हैं कहते हैं कि हमें गांव में ही अच्छा लगता है······धर्म ध्यान भी अच्छा होता है······पर उन्हें अब मैं जल्दी ही ले आऊँगा।"

"और कुछ नित्य नियम भी रखते हो कि केवल पैसों के ही पीछे दौड़ रहे हो?"

आपके सम्पर्क में आने और आप श्री की कृपा पूर्ण दृष्टि होने के पश्चात् मैं कोरा कैसे रह सकता हूँ। जिस दिन आपने मेरी दृष्टि को बदला, मेरी सोई हुई आत्मा को जागृत किया उसी दिन से बिना किसी व्यवधान के हम दोनों एक-एक सामा-

यिक नित्य करते हैं। कभी लम्बे प्रवास में रहता हूं तो भले ही व्यवधान हो जाय, अन्यथा कभी नहीं।"

"कैसा लगता है, सामायिक में?" आचार्श्री ने छोटा सा प्रश्न किया।

"गुरूदेव घंटा भर किधर निकल जाता है कुछ भी पता नहीं लगता। दिन भर बड़ी शान्ति बनी रहती है। जिस दिन सामायिक नहीं हो पाती दिन भर बहुत अटपटा लगता है। बड़ी तल्लीनता रहती है उतने समय तक, क्योंकि मैं उस समय व्यापार सम्बन्धी कोई कल्पना ही नहीं आने देता हूं......। मन बड़ा शान्त रहता है। गुरूदेव मैं बड़ा कृतज्ञ हूं आपका..." कहते हुये फिर नरेश की आंखें सजल हो जाती है।

"बहुत सुन्दर यही हमारे जीवन का मूल उद्देश्य है। मैं चाहता था कि आप अपने जीवन के महत्व को समझें और आज मुझे प्रसन्नता है कि आपने अपने आपको समझा है। क्यों सुधा तुम्हारा नित्य नियम कैसा चलता है।" आचार्य श्री ने सुधा की ओर उन्मुख होकर पूछा?

"भगवन्! आपके आशीर्वाद से बड़ा अच्छा जीवन क्रम चल रहा है। सामायिक नित्य प्रति करती हूं......आपकी कृपा पूर्ण दृष्टि का कथन करने के लिये मेरे पास कोई शब्द नहीं है, आपने मुझे और मेरे प्राणनाथ को जीवन दान दिया है, आपकी कृपा से और सब आनन्द हैं पर एक ही चिन्ता है........" कहते हुये सुधा ने नरेश पर एक तिरछी दृष्टि डाली।

"क्यों डरती क्यों हो। जो शिकायत हो वह साफ करो···
गवान् के सामने काहे का संकोच।" नरेश ने गम्भीर स्वर
हा।

नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है गुरूदेव। पर एक ही शिकायत
कि ये पैसों के पीछे बहुत ज्यादा दौड़ने लग गए हैं।

नौकरी लगने के पश्चात् इन्होंने मेरे सामने प्रतिज्ञा की थी
रु वर्ष भर में एक बार अवश्य दर्शन करूंगा। दो वर्ष निकाल
ये और नाम तक नहीं लिया दर्शनों का, अभी भी मैं जबरन
कर आई हूँ·······।" कहती हुई सुधा खिलखिला कर हंस पड़ी।

"नहीं, यह गलत बोल रही है गुरूदेव, गतवर्ष हमने आपके
थम दर्शन जनवरी में ही किये थे और अभी इस वर्ष का नवम्बर
चल रहा है। अभी वर्ष पूरा नहीं हुआ याने मेरी प्रतिज्ञा के अनु-
ार दोनों वर्षों में हमने दर्शन कर लिए हैं। यदि दिसम्बर
नेकल जाता और मैं दर्शन न करता तो शिंकायत वाजीब
ाती······" कहते हुये नरेश मुस्कराने लगा।

पर अभी तो आप कह रहे थे कि "मुझे फॉरेन (विदेश) जाने
ा प्रोग्राम भी केन्सल करना पड़ा।" यदि आप विदेश चले जाते
आपकी प्रतीज्ञा कैसी पूरी होती? आचार्यश्री ने मुस्कराते
ए कहा।

"क्षमा करें, गुरूदेव, आप तो बात के मर्म को पकड़ लेते हैं
स्तव में स्थिति यह है कि अन्तःकरण की भावना तो दर्शन की
ाबर बनी रहती है, किन्तु काम कुछ ऐसा फैल गया है कि
हते हुए भी नहीं निकल पाता हूँ·········आप तो महाप्राज्ञ हैं

गुरूदेव आपको क्या निवेदन करू ......पर पुरुषों की स्थिति और कार्यों को औरतें क्या समझती है.......? इनको तो कुछ काम है नहीं......।" कहते हुये नरेश भी सुधा की ओर देखकर हंसने लगा।

"नहीं, ऐसा मत सोचो नरेशजी। सुधा संभवतः आपसे भी अधिक गंभीर और धैर्यवती है.......उस रोज आप ही तो कह रहे थे कि यह देवी है.......और यह तो आपने प्रत्यक्ष देख ही लिया कि एक सुशिक्षित एवं धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न नारी पुरुषों में भी कितना परिवर्तन ला देती है......नारी की गरिमा का निर्वहन नारी ही कर सकती है.......दूर का क्या सोच। वर्तमान को ही देख लो, भारत की प्रधान्न मंत्री नारी ही तो है......कितना तहलका मचा दिया है आज एक नारी ने ? केवल भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व आज दांतों तले उंगली दबा रहा है, एक नारी की राजनैतिक निपुर्णता को देखकर। अतः आपका यह कथन उचित नहीं कि नारी क्या समझती है पुरुष के कार्यों को। हां यह ठीक है कि दोनों के अपने-अपने कार्य क्षेत्र अलग-अलग होते हैं, और उन्हें अधिकतर सफलता अपने-अपने क्षेत्र में ही मिलती है ! क्यों बहिन ठीक कह रहा हूँ ना मैं ?" कहते हुए आचार्य श्री ने सुधा को सचेष्ट किया।

सुधा लज्जा से सिर नीचा कर लेती है। नरेश एकदम गंभीर होकर आचार्य श्री के श्री मुख से झरने वाले बचन सुधा का चकोखत पान कर रहा है.......सुधा ने शर्माते हुए आचार्य श्री

के प्रश्न का उत्तर दिया। भगवन् आपका कथन तो यथार्थ है ही, मैं तो एक बची हूँ मुझमें इतनी योग्यता कहां ? हा आपके आशीर्वाद से मैं उस योग्यता तक अवश्य पहुँच सकूंगी।" कहती हुई सुधा तिरछी निगाह से नरेश की ओर देखने लगी।

"गुरूदेव आप भी इसकी प्रशंसा करने लगे ! माताजी भी दिनरात इसी के गीत गाती रहती है।' कहते हुये नरेश हंस दिया।

"नहीं प्रशंसा और गीत की बात नहीं है यह तो मैंने आपके प्रश्न का उत्तर दिया कि "नारी क्या समझती है पुरुष के कार्यों को" वैसे व्यक्ति यदि गुणवान है तो सहसा किंसी के भी मुख से उसकी प्रशंसा निकल ही पड़ती है। आचार्य श्री कुछ गंभीर बन जाते हैं।

इस प्रकार इस बीस मिनट तक कुछ तात्विक और कुछ विनोदपूर्ण वार्तालाप कर दोनों मांगलीक श्रवण कर अपने ठहरने की व्यवस्था के लिए चल पड़ते हैं।

